वैदिक धर्म

[मासिक पत्र]

संपादक — पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
सहसंपादक — पं० दयानंद गणेश धारेश्वर, B. A.

स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु. वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

वर्ष २४] [अङ्क ६

विषयानुक्रमणिका

क्रमाङ्क २८२

वर्ष २४ : : : : अङ्क ६

ज्येष्ठ संवत् २०००

जून १९४३

श्रेष्ठ वीर ।

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो
मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो
भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥

(ऋ० २।३४।१)

"(धारावराः) युद्धक्षेत्र में श्रेष्ठ, (धृष्णु-ओजसः) शत्रु का पराभव करनेवाले, (मृगाः न भीमाः) सिंह के समान भयंकर दीखनेवाले, (तविषीभिः अर्चिनः) बल के कारण पूजनीय होनेवाले, (अग्नयो न शुशुचानाः) अग्नि के समान तेजस्वी, (ऋजीषिणः) सोम का सेवन करनेवाले अथवा वेगवान्, (भृमिं धमन्तः) वेग से कार्य करनेवाले वीर, (गाः अपावृण्वत) गायों को शत्रु के प्रतिबन्ध से छुडाते हैं । "

जो ऐसे वीर होंगे, वे श्रेष्ठ वीर होंगे ।

दैवत-संहिताका भाषानुवाद ।

मरुतोंका मंत्रसंग्रह ।

दैवतानुसारी मंत्रसंग्रह करके उस के मुद्रण का कार्य गत दो वर्षों से स्वाध्याय-मंडलमें चल रहा है। इसीका नाम 'दैवत-संहिता' है। इस समय जो ऋग्वेद संहिता है वह 'आर्षेय-संहिता' है। ऋग्वेदसंहिता का नवम मण्डल केवल सोमदेवता के मंत्रसंग्रहरूप ही होने से वह एक दैवतसंहिता का नमूना कहा जा सकता है, वैसा ही सामवेद का पूर्वार्चिक दैवतसंहिताका नमूना हो सकता है।

इस दैवतसंहिता का प्रथम भाग मुद्रित हुआ है और वह ग्राहकों के पास भेजा गया है। इस प्रथम विभाग में अग्निके २४८३ मन्त्र, इन्द्र के ३३६३, सोम के १२६१ तथा मरुदेवता के ४६४ मन्त्र, अर्थात् इन चार देवताओं के मिलकर ७५७१ मन्त्र छप चुके है।

बंबई युनिवर्सिटीने इस दैवतसंहिता को पसंद करके इस के मुद्रण और प्रकाशन के लिये सहाय्यतार्थ ५००) पांच सौका दान दिया है। इस दैवतसंहिता का प्रकाशन होते ही चारों ओर विद्वानों में इस की प्रशंसा शुरू हो गयी और वेद के विचारकों के लिये इस ग्रंथ की अत्यंत उपयोगिता है, यह बात सब बोलने लगे, इस कारण इस के द्वितीय भाग की मांग प्रतिदिन बढने लगी। द्वितीय भाग की मांग बढने के कारण इस द्वितीय भाग का मुद्रण शुरू किया गया। इस विभाग में अश्विनौ देवताके ६८९ मन्त्र, आयुर्वेद-प्रकरण के २३४५, रुद्रदेवता के २२७, उषादेवता के १९४ अर्थात् इन देवताओंके ३४५५ मन्त्र इस समय तक छप चुके हैं। इन देवताओंकी विविध उपयोगी सूचियां तथा अगले देवताओंके संग्रह छप रहे हैं। यह दूसरा भाग अतिशीघ्र ही ग्राहकों के पास तैयार होते ही भेजा जायगा। हमें यह द्वितीय भाग तथा इसके अगला विभाग भी डेढ साल के अन्दर पूर्णतया छापकर प्रकाशित करना है।

जैसे जैसे यह देवतासंग्रह छपकर प्रकाशित होने लगा वैसे वैसे एक एक देवता के मंत्रसंग्रह का अर्थ प्रकाशित करने का तगादा ग्राहकों के द्वारा होने लगा। और यह तगादा अत्यधिक बढ रहा है। इसलिये हमने यह मरुद्देवताका अनुवाद छापकर प्रकाशित किया है, जो वैदिक धर्म के ग्राहकों के पास पहुंच गया है और जो शेष भाग है वह शीघ्र ही पहुंच जायगा। इस नमूने के समान ही आगामी भाग प्रकाशित किये जांयगे। इस मंत्रानुवाद में मंत्रों का पद-पाठ, अन्वय, अन्वयानुसारी भाषानुवाद, भावार्थ, टिप्पणी, आदि देकर जहां तक शब्दोंद्वारा किया जा सकता है, वहां तक मंत्रों का तत्वज्ञान सरल और सुबोध किया है। वैदिक धर्म के १९३ पृष्ठों में ४९८ मंत्रों का भाषानुवाद छप चुका है, आगे ९ पृष्ठों में संहिता और ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रंथोंमें से मरुतों के संदर्भ-वाक्य दिये हैं। इनके आगे २६ पृष्ठों में मरुन्मंत्रों के सुभाषितों का संग्रह है। पृष्ठ २२८ तक यह संग्रह है। इसमें क्षात्रधर्म का उपदेश संग्रह-रूप से आ चुका है। क्षत्रियोचित धर्म इन वचनों से सिद्ध हो सकता है। पाठक इस दृष्टि से इसकी आलोचना करें। आगे एक पृष्ठमें स्त्री-विषयक उल्लेख है। आगे ग्यारह पृष्ठों में पुनरुक्त मन्त्र विस्तार से दिये हैं। इसके आगे विस्तार से मरुतों का परिचय छप रहा है। इस तरह प्रत्येक देवता के मंत्रों का अनुवाद आगे छपता रहेगा।

जब मरुद्देवता का मन्त्र-संग्रह छप कर तैयार होगा, तब ग्राहकों को सूचना दी जायगी। इस तरहके इन संग्रहोंका अध्ययन पाठक करेंगे, तो इनको वेद के धर्म का ज्ञान हो जायगा।

—निवेदनकर्ता

" अश्विनौ " देवता का स्वरूप ।

वेदों में " अश्विनौ " देवता है। इस देवता का मन्त्र-संग्रह इस भूमिका के साथ पाठकों के सामने रखा जाता है। इस संग्रह में ६८९ मन्त्र हैं। इनमें ऋग्वेद के ६३३, वा० यजुर्वेद के ७, सामका १, अथर्व के ११ मंत्र हैं। सब मिलकर ६५२ मंत्र हुए। शेष ३७ मंत्र अश्विसहचारी देवतागण के हैं। ये सब मिलकर ६८९ होते हैं। अन्य पुनरुक्त मंत्रों की गणना यहां की नहीं है। इन देवतामंत्रों के ऋषि ये हैं—

ऋषि	मंत्र
१ कक्षीवान् दैर्घतमसः	८३
२ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	५६
३ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः	३९
४ ब्रह्मातिथिः काण्वः	३७
५ घोषा काक्षीवती	२८
६ प्रस्कण्वः काण्वः	२५
७ कुत्स आंगिरसः	२५
८ श्यावाश्व आत्रेयः	२४
९ अथर्वा	२४
१० सध्वंसः काण्वः	२२
११ शशकर्णः काण्वः	२१
१२ प्रजापतिः [यजुः]	२१
१३ पौर आत्रेयः	२०
१४ विमना वैयश्वः	१९
१५ सोभरिः काण्वः	१८
१६ गोपवन आत्रेयः	१८
१७ पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ	१४
१८ हिरण्यस्तूप आंगिरसः	१२
१९ दीर्घतमा औचथ्यः	१२
२० गृत्समदः शौनकः	१२
२१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	११
२२ भूतांशः काश्यपः	११
२३ भौमोऽत्रिः	११
२४ विश्वामित्रो गाथिनः	९
२५ वामदेवो गौतमः	९
२६ अवस्युरात्रेयः	९
२७ सप्तवध्रिरात्रेयः	९
२८ कृष्ण आंगिरसः	९
२९ प्रगाथः काण्वः	६
३० कृष्णो द्युम्नीको वासिष्ठः	६
३१ अत्रिः सांख्यः	६
३२ मेधातिथिः काण्वः	५
३३ कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिः	५
३४ जमदग्निर्भार्गवः	५
३५ मेध्यः काण्वः	४
३६ मधुच्छंदा वैश्वामित्रः	३
३७ शुनःशेप आजीगर्तिः	३
३८ गोतमो राहूगणः	३
३९ परुच्छेपो दैवोदासिः	३
४० नाभाकः काण्वः	३
४१ विमद ऐन्द्रः	३
४२ विश्वामित्रः	३
४३ सुहस्त्यो घौषेयः	२
४४ सुकीर्तिः काक्षीवतः	२
४५ इरिम्बिठिः काण्वः	१
४६ त्वष्टा प्राजापत्यः	१
४७ अश्विनौ वैवस्वतौ	१
४८ ब्रह्मा	१

इस तरह मन्त्रसंख्या ऋषियोंके द्वारा देखी मिलती है। अब अश्विनी देवता के विषय में ब्राह्मणग्रन्थों में जो निर्वचन मिलता है, वह यहां देते हैं—

अश्विनौ देवता के विषय में ब्राह्मणवचन।

अश्विनौ देवता के विषयमें ब्राह्मण-ग्रंथों में निम्नलिखित निर्वचन मिलते हैं, जो इस देवता-स्वरूप के बताने में सहायक हो सकते हैं—

इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षं अश्विनौ, इमे हीदं सर्वं आश्नुवातां, पुष्करस्रजाविति अग्निरेवास्यै [पृथिव्यै]

पुष्करं आदित्योऽमुष्मै [दिवे]। [श० ब्रा० ४।१।५।१६]
श्रोत्रे अश्विनौ। [श० ब्रा० १२।९।१।१३]
नासिके अश्विनौ। [श० ब्रा० १२।९।१।१४]
तौ ह वा इमौ पुरुषाविवाक्ष्योः। एतावेवाश्विनौ।
[श० ब्रा० १२।९।१।१२]

अश्विनावध्वर्यू। [ऐ० ब्रा० १।१८; श० ब्रा० १।१।२।१७; ३।९।४।३; तै० ब्रा० ३।२।२।१; गो० ब्रा० उ० २।६]
अश्विनौ वै देवानां भिषजौ।
[ऐ. ब्रा. १।१८; कौ. ब्रा. १८।१]
मुख्यौ वा अश्विनौ [यज्ञस्य]। [श. ब्रा. ४।१।५।१९]
इयेताविव हि अश्विनौ। श. ब्रा. ५।५।४।१]
स योनी वा अश्विनौ। [श. ब्रा. ५।३।१।८]
अश्विनाविव रूपेण [भूयासं]। मं. ब्रा. २।४।१४]
आश्विनं द्विकपालं पुरोडाशं निर्वपति।
[श. ब्रा. ५।३।१।८]

आश्विनो द्विकपालः [पुरोडाशः]। तां. ब्रा. २१।१०।२३]
वसन्तग्रीष्मावेवाभ्यां अश्विनाऽभ्यां [अवरुन्धे]।
[श. ब्रा. १२।८।२।३४]
अश्विभ्यां धानाः। [तै. ब्रा. १।५।११।३]
अथ यदेनं [अग्निं] द्वाभ्यां बाहुभ्यां द्वाभ्यामरणीभ्यां मन्थन्ति, द्वौ वा अश्विनौ, तदस्याश्विनं रूपम्।
[ऐ. ब्रा. ३।४]
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे। अश्विनोर्बाहुभ्याम्।
[तै. ब्रा. २।६।५।२]

गर्दभरथेनाश्विना उदजयताम्। [ऐ. ब्रा. ४।९]
तदश्विना उदजयतां रासभेन। [कौ. ब्रा. १८।१]
इममेव लोकमाश्विनेन [अवरुन्धे]।
[श. ब्रा. १२।८।२।३२]
अश्विनमन्वाह तदमुं लोकं [दिवं] आप्नोति।
[कौ. ब्रा. ११।२।१८।२]

[१] सब का भक्षण करते हैं, इसलिये द्यावापृथिवी ये दोनों लोक अश्विनी हैं, [२] दोनों कान, [३] दोनों नाक, [४] दोनों आंख अश्विनी हैं, [५] दोनों अध्वर्यु अश्विनौ हैं, [६] ये दोनों देवों के वैद्य हैं, [७] एक ही स्थानसे ये दोनों उत्पन्न होते हैं, [८] गर्दभ के रथ से अश्विनी देव आते हैं।

उक्त वचनोंसे जो निर्वचन मिलते हैं, वे ये हैं। 'बहुत खानेवाले, बहुत व्यापनेवाले' ये 'अश्' धातुके अर्थ हैं। येही यहां इन निर्वचनों में दीख रहे हैं। कान, नाक और आंख अपनी शक्तिसे विश्व को व्यापते हैं, आंख तो अपनी शक्ति से सब विश्व व्यापता है। इसलिये ये इंद्रिय अश्विनौ हैं। मनुष्यशरीर में अश्विनौ के ये रूप हैं। वैद्य अपनी चिकित्सा से बीमारी को घेरता और उसका नाश करता है। अध्वर्यू यज्ञप्रक्रिया को व्यापते हैं। इस तरह इन निर्वचनों का तात्पर्य है। इन निर्वचनों को देखने के बाद अब निरुक्त के वचन देखिये—

अथातो द्युस्थाना देवताः। तासामश्विनौ प्रथमागामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं, रसेनान्यो, ज्योतिषान्यः। अश्वैरश्विनावित्यौर्णवाभः। तत् कावश्विनौ? द्यावापृथिव्यावित्येके। अहोरात्रावित्येके। सूर्याचन्द्रमसावित्येके। राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः। तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात् प्रकाशीभावस्यानुविष्टम्भमनु, तमोभागो हि मध्यमः ज्योतिर्भाग आदित्यः ॥ १ ॥

तयोः समानकालयोः समानकर्मणोः संस्तुतप्राययोरसंस्तवेनैषोऽर्धर्चो भवति-वासात्यो अन्य उच्यते, उषः पुत्रस्तवान्य इति ॥ २ ॥

इह चेह च जातौ संस्तूयते पापेनालिप्यमानतया तन्वा नामभिश्च स्वैः। जिष्णुर्वामन्यः सुमहतो बलस्येरयिता मध्यमः, दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊह्यत आदित्यः ॥३॥
प्रातर्युजा विबोधयाश्विनावेह गच्छताम्। [ऋ. १।२२।१]
प्रातर्योगिनौ विबोधयाश्विनाविहागच्छताम्।
[निरुक्त अ. १३।१]

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥
[ऋ. १०।१०६।६]

सृण्येवेति द्विविधा सृणिर्भवति भर्ता च हन्ता च, तथा अश्विनौ चापि भर्तारौ, जर्भरी भर्तारावित्यर्थः, तुर्फरीतू हन्तारौ। नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका- नितोशस्यापत्यं नैतोशं, नैतोशेव तुर्फरी क्षिप्रहन्तारौ। उदन्यजेव जेमना मदेरू- उदन्यजेवेत्युदकजे इव रत्ने सामुद्रे चान्द्रमसे वा। जेमने जयमाने, जेमना मदेरू। तां मे जराय्वजरं

मराशु, पुनर्जरायुजं शरीरं शरदं अजीर्णम् ॥ ५ ॥

[निरुक्त, १२।५]

अब द्युलोक की देवताओं की व्याख्या करते हैं। इन में अश्विदेव प्रथम आनेवाले होते हैं। ये सब व्यापते हैं, इनमें एक रस से व्यापता है और दूसरा प्रकाश से व्यापता है। और्णवाभ ऋषि का मत है कि, अश्विदेवोंके पास बहुत घोडे थे, घोडे पास रखने के कारण उनका नाम अश्विनौ हुआ। कौन भला ये अश्विनौ हैं ? ' द्यु और पृथिवी ' ऐसा कई मानते हैं, ' दिन और रात्री ' ऐसा कई समझते हैं, ' सूर्य और चन्द्र ' ऐसा कइयों का मत है, ऐतिहासिक लोग मानते हैं कि, ये पुण्यकर्म करनेवाले दो राजा हुए थे। इनका समय आधीरात व्यतीत होनेके पश्चात् का है, जब प्रकाश फटने लगता है, तब इनका उदय होता है। इस काल में जो अन्धकार का भाग है, वह मध्यम देवता है और जो ज्योति का भाग है, आदित्य का भाग है। इस तरह अन्धकार और प्रकाश इस समय इकट्ठे रहते हैं, येही अश्विनौ हैं।

ये दोनों देव एक ही काल में आते हैं, एक ही कर्म करते हैं। इनका वर्णन ' वसातिषु स्म० ' आदि मन्त्र में किया है। इनमें से एक रात्री का और दूसरा उषा का पुत्र कहलाता है। अथवा इनमें से एक बडे बल का प्रेरक है और दूसरा द्युलोक का पुत्र आदित्य है। ये प्रातःकाल में आनेवाले हैं, ऐसा [प्रातर्युजा०] मन्त्र में कहा है।

[सृण्येव०] जिस प्रकार दात्री पोषण करनेवाली और नाश करनेवाली अर्थात् दोनों प्रकार की होती है, वैसे ही अश्विनौ में से एक देव पोषक है और दूसरा नाशक है।

इस तरह निरुक्त का अश्विनौ देवताओंके विषय में स्पष्टीकरण है। ब्राह्मणग्रन्थों के कथनों के अनुसार ही निरुक्तकारने अपना मत दिया है। [१] द्यावा-पृथिवी, [२] सूर्य-चन्द्र, [३] अहो-रात्र, [४] पुण्यकर्म करनेवाले दो राजा, [५] अंधेरा-प्रकाश, तथा [६] पोषक-संहारक इतने स्वरूप बताने के कारण अश्विनौ के विषय में किसी तरह का निश्चय नहीं होता। इसलिये वेदके मंत्रों में अश्विनौ देवता के स्वरूप के विषय में अधिक खोज करना चाहिये। देखिये मंत्रों में क्या क्या वर्णन आया है—

अश्विनौ देवता और ' तीन ' संख्या।

अश्विनौ देवता के वर्णन में ' तीन ' [३] इस संख्या का महत्व विशेष दीखता है देखिये—

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा। [१२; ऋ. १।३४।१]
आज तीन वार तुम हमारे बनो।

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे०। त्रयः स्कंभासः०।
त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ [१३; ऋ. १।३४।२]

हे अश्विदेवो ! तुम्हारे रथ के तीन चक्र हैं, तीन खंभे लगाये हैं। तुम दिन में तथा रात्रीमें तीन तीन वार जाते हो।

समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्। त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यं उषसश्च पिन्वतम्। [१४; ऋ. १।३४।३]

आज एक ही दिन में तीन वार आओ और आज भी तीन वार आकर मधुसिंचन करो। आप दिनमें तथा रात्रीमें तीन तीन वार आकर पुष्टिकारक अन्न प्रदान करो।

त्रिर्वर्तियातं त्रिरनुव्रते जने त्रिःसुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्। त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिःपृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ [१५; ऋ. १।३४।४]

तुम हमारे पास तीन वार आओ, अपने भक्त के पास तीन वार जाओ, सुरक्षाके लिये तीन वार जाओ, तीन वार शिक्षा दो। हमारे पास तीन वार आनन्द लाओ तथा तीन वार अन्न प्रदान करो।

त्रिर्नो रयिं वहतं अश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः। त्रिःसौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद्रथम्। [१६; ऋ. १।३४।५]

' हमारे पास तीन वार संपति ले आओ, इस देवकर्म में तीन वार हमारी रक्षा करो, तीन वार हमें सौभाग्य देओ, तीन वार अन्न दो, तुम्हारे तीन स्थानवाले रथ पर सूर्य की पुत्री आरूढ हुई है।

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिःपार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः। त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती। [१७; ऋ. १।३४।६]

हमें तीन वार दिव्य, पार्थिव और जलोत्पन्न औषधियां देते रहो; तथा तीनगुणा सुख हमें देते रहो।

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीम

शाश्वतम् । त्रिस्रो नासत्या रथ्या परावत० ।
[१८; ऋ. १।३४।७]

तीन वार प्रति दिन यज्ञ करते हैं। पृथ्वीके चारों ओर तुम तीन वार घूमते हो। रथसे तीन वार तुम दूर जाते हो।

क त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क त्रयो बन्धुरो ये सनीळाः ।
[ऋ. १।३४।९]

तुम्हारा त्रिकोणवाला रथ तीन चक्रोंवाला और तीन बैठने के स्थानों से युक्त है।

आ नो नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना। प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा । [२२; ऋ. १।३४।११]

हे अश्विदेवो ! ३३ देवों को साथ लेकर मधुर रस का पान करने के लिये यहां आओ। हमारी आयु बढाओ, रोग दूर करो, शत्रु का नाश करो और हमारे सहायक बनो।

त्रिबन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेनायातमश्विना ।
[४०; ऋ. १।४७।२]

तीन बैठकोंवाले त्रिकोणी सुंदर रथसे हे अश्विदेवो! आओ।

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो० त्रिबन्धुरो० ।
[१६५; ऋ. १।१५७।३]

तं युञ्जाथां० त्रिबन्धुरो० त्रिचक्रः ।
[२०२; ऋ. १।१८३।१]

अश्विदेवों का रथ त्रिकोणी है, तीन चक्रों से युक्त है, बैठने के तीन तीन स्थान उस में हैं।

इस तरह अश्विदेवों के वर्णन में 'तीन' संख्याका बडा महत्त्व है।

अश्विदेव वैद्य हैं।

युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिः। [१६८; ऋ. १।१५७।६]

'आप के पास औषधियां हैं, इसलिये आप वैद्य हैं।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि, अश्विदेव बडे वैद्य हैं, उनके पास बहुत औषध हैं और वे रोगियों की चिकित्सा करते हैं। इनके वैद्य होनेके विषय में हम कुछ और मन्त्र यहां रखते हैं, पाठक इनका विशेष विचार करें—

अश्विनी देवताओं का चिकित्सक होना सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस विषय में निम्नलिखित मन्त्र देखनेयोग्य हैं—

वृद्ध को तरुण बनाया।

अश्विदेवों ने अति जीर्ण च्यवनऋषि को तरुण बनाया था, यह कायाकल्प का प्रयोग अश्विदेवों ने किया था, वह बात जैसी पुराणों में वैसी वेदमंत्रों में भी दीखती है—

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्। प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुतं कनीनाम् ।
[८६; ऋ. १।११६।१०]

हे अश्विदेवो ! तुमने च्यवननामक एक वृद्ध के शरीर से कवच जैसी खाल उतार कर [बुढापा दूर किया और] उस की आयु बढायी और तरुण कन्याओंका पति बनाया।

यहां कायाकल्प के प्रयोग का कुछ वर्णन है। [च्यवनात् जुजुरुषः वव्रिं द्रापिं इव प्रामुञ्चतं] वृद्ध च्यवन ऋषि के शरीर से कवच के समान संपूर्ण बुढापा दूर किया। शरीर से जैसा कोट या कुडता निकाल देते हैं, उस प्रकार शरीर से खाल निकाल कर उसको तरुण बनाया। यहां [द्रापिं प्रामुञ्चतं] चोगा उतारने का स्पष्ट उल्लेख है। सांप-नाग- भी अपने शरीर से चोगा उतारता है और फिर तरुण बनता है। सब शरीर से चर्म ऊपर की पतली त्वचा सांप के समान निकालने से शरीर पुनः तरुण हो जाता है ऐसा यहां प्रतीत होता है। आयुर्वैद्यक ग्रंथोंमें जो कायाकल्प वर्णन किये हैं, उनमें भी कुटिप्रवेशविधिसे कायाकल्पों का सेवन करनेसे शरीर की चमडी उतर जाती है और नवीन चमडी आती है, इस आशय के विधान हैं। इस विषय में सत्य क्या है, इसका विचार उत्तम वैद्यों को करना उचित है।

'च्यवनप्राश' अवलेह का वर्णन वैद्यक ग्रन्थोंमें है, जो च्यवन के पुनः तरुण बनने का स्मरण कराता है।

इस मन्त्र में वृद्ध को 'दीर्घायु' करने का भी उल्लेख है, तथा अनेक तरुणियों के साथ [कनीनां पतिं] विवाह च्यवनने किया, ऐसा भी कहा है। वृद्ध को तरुण बनाया, दीर्घायु बनाया और अनेक तरुणियों का पति भी बनाया गया था। यह अश्विदेवोंने अपने चिकित्सा के बलसे किया था। इस विषय में और मन्त्र देखिये—

युवं च्यवानं अश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ॥ [११४; ऋ० १।११७।१३]

पुनश्च्यवानं चक्रथुः युवानम् ॥ [ऋ० १।११८।६]
विभिश्च्यवानं अश्विना नियाथः ॥ [ऋ० ५।७५।५]
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिं अत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनरा कामं ऋण्वे वध्वः ॥
[२७२, ऋ० ५।७४।५]

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद्वर्प इत ऊती धत्थः । [ऋ० ७।६८।६]
युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं । [ऋ० ७।७१।५]
युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
[५८६; ऋ० १०।३९।४]

इन मन्त्रों का तात्पर्य यही है कि, अश्विदेव [च्यवानं नियाथः] च्यवन ऋषि के पास गये, उस वृद्ध ऋषि की चिकित्सा इन्होंने की, [वव्रिं अत्कं न मुञ्चथः] चोगे के समान सब खाल उतार दी, जिस से उस ऋषि का बुढापा दूर हुआ, [पुनः युवानं चक्रथुः] फिर से उसको जवान बनाया, वार्धक्य से उस की मुक्तता की, जैसा पुराना रथ [यथा रथं] कारीगर दुरुस्त करके नया बनाते हैं, वैसा ही च्यवन ऋषि को फिर से तरुण बनाया, यह च्यवन ऋषि अश्विदेवों को हवि अर्पण करता था । यह सब कार्य [शचीभिः] अपनी अद्भुत चिकित्सा की शक्तियों से अथवा औषधिविशेषों के प्रयोग से इन्होंने किया था । जो च्यवन चलनेफिरने में भी असमर्थ था, वही [चरथाय] अच्छी तरह घूमने लगा और [वध्वः कामं] स्त्रीसम्बन्ध का कामविकार उस में जाग्रत किया । अर्थात् यह ठीक तरह तरुण हुआ । इसी तरह वन्दनके विषयमें भी कहा है—

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः । [ऋ. १।११९।७]
उद् वन्दनं ऐरयतं स्वर्दृशे । [ऋ. १।११२।५]
प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा । [ऋ. १।११९।६]

हे अश्विदेवो ! तुमने वन्दन को निकृष्ट वृद्धावस्था को पहुंचे वन्दन को, उत्तम दृष्टि देकर, रथ दुरुस्त करने के समान तरुण अथवा हृष्टपुष्ट बनाया और [दीर्घेण आयुषा प्र तारि] दीर्घायु बनाया ।

रथ दुरुस्त करने के समान इसका शरीर तुमने नाना औषधों के प्रयोग से ठीक बनाया । प्रसूतिकर्म में अश्विदेवों की प्रवीणता थी, इस विषय में निम्नलिखित मन्त्र में उल्लेख है—

क्षेत्रादा विप्रं जनथः । [ऋ. १।११६।७]

क्षेत्र से [अर्थात् माता के गर्भाशय से] ब्राह्मणपुत्रको जन्म दिया । अर्थात् प्रसूतिकर्म की प्रवीणता से पुत्र को जन्म देकर माता की मुक्तता प्रसूतिवेदनाओं से की । इस मन्त्र में अश्विदेवों की प्रसूतिकर्म में प्रवीणता बतायी है ।

घायल को दुरुस्त किया ।

त्रिधा ह श्यावं अश्विना विकस्तं उज्जीवसे ऐरयतं सुदानू ॥ [ऋ० १।११७।२४]

तीन स्थान पर कटे या जखमी हुए श्याव को पुनः जीवन देकर चलनेफिरनेयोग्य बना दिया ।

तीन स्थान पर जिस के करीब करीब टुकडे हो चुके थे, ऐसे जखमी के टूटे भागों को पुनः जोड दिया और उस को अच्छी तरह चलनेफिरनेयोग्य बना दिया ।

च्यवनऋषि की कथा शतपथब्राह्मण में निम्नलिखित प्रकार आ गयी है और उसमें अश्विदेवों का यही सम्बन्ध वर्णन किया गया है, वह कथा देखो—

च्यवनो वा भार्गवः, च्यवनो वाङ्गिरसः, तदेव जीर्णिः कृत्यारूपो जहे ॥ १ ॥ शर्यातो ह वा इदं मानवो ग्रामेण चचार । स तदेव प्रतिवेशो निविविशे तस्य कुमाराः क्रीडन्त इमं जीर्णिं कृत्यारूपमनर्थ्यं मन्यमाना लोष्टैर्विपिपिषुः ॥ २ ॥ स शर्यातेभ्यश्चुक्रोध । तेभ्योऽसंज्ञां चकार, पितैव पुत्रेण युयुधे, भ्राता भ्रात्रा ॥३॥ शर्यातो ह वा ईक्षां चक्रे । यत्किमकरं तस्मादिदमापदीति स गोपालांश्चाविपालांश्च संह्वयित्वा उवाच ॥ ४ ॥ स होवाच । को वो अद्येह किंचिदद्राक्षीदिति, ते होचुः, पुरुष एवायं जीर्णिः कृत्यारूपः शेते, तमनर्थ्यं मन्यमानाः कुमारा लोष्टैर्व्यपिक्षिपन्निति, स विदांचकार स वै च्यवन इति ॥ ५ ॥ स रथं युक्त्वा । सुकन्यां शार्यातीमुपाधाय प्रसिष्यन्द, स आजगाम, यत्रर्षिरास तत् ॥ ६ ॥ स होवाच । ऋषे नमस्ते यन्नावेदिषं तेनाहिंसिषमियं सुकन्या तया तेऽपह्नुवे संजानीतां मे ग्राम इति, तस्य ह तत एव ग्रामः संजज्ञे स ह तत एव शर्यातो मानव उद्युयुजे नेदपरं हिनसानीति ॥ ७ ॥ अश्विनौ ह वा इदं भिषज्यन्तौ चेरतुः । तौ सुकन्यामुपेयतुः, तस्यां मिथुनमीषाते, तन्न जज्ञौ ॥ ८ ॥ तौ होचतुः । सुकन्ये कमिमं जीर्णिं

कृत्यारूपमुपशेष आवामनुप्रेहीति, सा होवाच, यस्मै मां पितादात्नैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति, तद्धायमृषिराजज्ञौ ॥ ९ ॥ स होवाच । सुकन्ये किं त्वेतदवोचतामिति, तस्मा एतद्व्याचचक्षे, स ह व्याख्यात उवाच, यदि त्वैतत्पुनर्ब्रुवतः सा त्वं ब्रूतान्न वै सुसर्वाविव स्थो, न सुसमृद्धाविवाथ मे पतिं निन्दथ इति, तौ यदि त्वाब्रवतः, केनावामसर्वौ स्वः, केनासमृद्धाविति, सा त्वं ब्रूतात्पतिं नु मे पुनर्युवाणं कुरुतमथ वां वक्ष्यामीति, तां पुनरुपेयतुस्तां हैतदवोचतुः ॥ १० ॥ तौ होचतुः । एतं ह्रदमभ्यवहर, स येन वयसा कमिष्यते तेनोदैष्यतीति, तं ह्रदमभ्यवजहार, स येन वयसा चकमे तेनोदेयायेति ॥ १२ ॥ [श. ब्रा. ४।१।५।१-१२]

च्यवननामक एक ऋषि था, जो भृगुकुल का समझा जाता है, अथवा आंगीरसकुल का भी माना जाता है। वह अति जीर्ण हो कर मरियलसा होकर एक स्थान पर पडा था। उस स्थान पर मनुवंश का शर्यात राजा आया। इस राजा के लडके वहां खेलने लगे। उन लडकोंने उस अति जीर्ण ऋषिके मुर्दे जैसे शरीर पर पत्थर मारे। इससे ऋषि को क्रोध आया, जिससे राजा के राज्य में सब प्रजाजनों की बुद्धि नष्ट हुई, वे आपस में लडने लगे। पिता पुत्रसे और भाई भाईसे लडने लगा। राजा शर्यात सोचने लगा कि, मैंने क्या ऐसा बुरा कर्म किया कि, जिसके कारण यह ऐसी आपत्ति आ गयी। उसने गवालियों को बुलाकर पूछा कि तुमने यहां कुछ देखा है? वे बोले कि, वह जो अतिजीर्ण मुर्दासा पडा है, वह मरा है, ऐसा मान कर तुम्हारे कुमारोंने उस पर पत्थर मारे, वह च्यवन ऋषि है, ऐसा बस राजाने जान लिया। पश्चात् अपनी कन्या को रथ पर बिठलाकर वह उस ऋषिके पास पहुंचा और उससे बोला कि ' हे ऋषि! नमस्ते। मुझे तुम्हारा ज्ञान नहीं था, इसलिये तुमको बहुत कष्ट पहुंचे। क्षमा करो। यह मेरी पुत्री है, यह तुम्हारे लिये अर्पण करता हूं। इसको प्राप्त करके सन्तुष्ट होओ। मेरे राज्य में जो बलवा उठा है, वह शान्त होवे।' तब ऋषि सन्तुष्ट हुआ और राज का बलवा शान्त हुआ। यह देखकर शर्यात राजाने प्रतिज्ञा की कि, मैं अब इसके बाद किसी को कष्ट नहीं दूंगा। उस ऋषि के आश्रम के पास अश्विदेव किसी की चिकित्सा करने के लिये आये थे, इन्होंने सुकन्याको देखा और उस तरुणी की इच्छा की। पर उस कन्याने उसके प्रस्ताव का स्वीकार नहीं किया। तब वे उससे पूछने लगे कि, 'हे सुकन्ये' तुम इस मुर्दा बने जीर्ण के पास क्यों रहती हो? तू हमारा स्वीकार कर।' तब वह कन्या बोली कि- 'मेरे पिताने जिसको मेरा दान किया है, जब तक वह जीवित है, तब तक मैं उसे नहीं छोडूंगी।' सुकन्या का यह भाषण ऋषिने जान लिया, तब वह उस स्त्रीसे बोले कि, जिस समय वे अश्विनी कुमार फिर से तुम्हें ऐसा भाषण करने लगेंगे, तब तुम उनसे कहना कि- 'तुम मेरे पति की निंदा करते हो, परन्तु तुम तो अपूर्ण और सौभाग्यहीन से हो। यदि तुम मेरे पति को पुनः तरुण बनाओगे, तब सुपूर्ण तथा भाग्यसंपन्न बनाने का उपाय बताऊंगी।' सुकन्याने ऐसा अश्विनीकुमारों से कहा, तब वे बोले कि यदि तुम्हारा पति इस तालाव में गोता लगावे, तब जिस आयुका स्मरण करके वह गोता लगावेगा, उसी आयु को ऊपर आनेके पूर्व प्राप्त करेगा।' वैसा किया गया और च्यवन ऋषि उस तालावमें गोता लगाते ही तरुण बन गये। तब अश्विदेवोंने सौभाग्यसंपन्न बननेका मार्ग पूछा, तब उस ऋषिने यज्ञमें हविर्भाग प्राप्त करने का उपाय बताया। अश्विनीकुमार मानवों में जाते हैं, हर किसी की चिकित्सा करते हैं, इसलिये हमारी पंक्ति में बैठ कर हविर्भाग सेवन नहीं कर सकेंगे, ऐसा इन्द्रने निषेध किया, पर ऋषि के सामर्थ्य से इस समय से अश्विनी देवों को यज्ञ में हविर्भाग मिलने लगा।'

संक्षेप से यह कथा शतपथ ब्राह्मण में है। यही कथा पुराणों में अधिक विस्तृत रूपवाली हो गयी है। इस कथा का संबंध वेद के पूर्वोक्त मंत्रों के साथ स्पष्ट है।

अन्धे को आंख दिये।

अश्विनी देवोंने अन्धे को आंख और पंगु को चलनेयोग्य पांव दिये, यह चमत्कार निम्नलिखित मंत्र में है-

याभिः शचीभिः वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः। [५९; ऋ. १।११२।८]

अनेक अपनी शक्तियों के द्वारा परावृज का अन्धत्व दूर करके उत्तम दृष्टिसे युक्त तथा उसका लंगडेपन हटा के उस

को उत्तम चलनेफिरनेवाला बना दिया। ऐसा ही वर्णन इन्द्र के लिये भी आया है-

नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन् त्सास्युक्थ्यः। [ऋ. २।१३।१२]

अन्धे और लूले परावृज को नीच अवस्था से उच्च बना कर [उत्तम दृष्टि से संपन्न और चलनेफिरनेवाले बनाकर] कीर्तिमान, यशस्वी बना दिया।

जैसी परावृजको दृष्टि दी, वैसी ही ऋज्राश्वको भी अश्वि-देवोंने दृष्टि दी, देखिये—

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानं ऋज्राश्वं तं पितान्धं चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्त दस्रा भिषजावनर्वन्। [९१; ऋ. १।११६।१६]

शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा। आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥ १७ ॥

शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान्॥
[११८-११९; ऋ० १।११७।१७-१८]

श्रुतं गायत्रं तकवानस्य ... आक्षी शुभस्पती दन्।
[ऋ० १।१२०।६]

ऋज्राश्वने एकसौ एक मेष भेडिये को खाने दिये, यह देख कर उसके पिताने उस ऋज्राश्व को अन्धा बना दिया। परन्तु अश्विदेवोंने इस ऋज्राश्व के आंख पुनः देखनेयोग्य बना दिये।

कवि को आंख दिये।

उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे।
[ऋ. १।११६।१४]

'दृष्टि की इच्छा से प्रार्थना करनेवाले कवि को उत्तम आंख दिये।' संभवतः यह दृष्टि कविकी क्रान्तदृष्टि होगी। बहुत करके इस स्थान पर की दृष्टि काव्य की दृष्टि है। तथापि पाठकों को ऐसे मंत्रों का विशेष विचार करना चाहिए।

मद्य के १०० घडे।

शतं कुम्भां असिञ्चतं सुरायाः। [ऋ. १।११६।७]
शतं कुम्भां असिञ्चतं मधूनाम्। [ऋ. १।११७।६]

"सुरा के अथवा मधू के १०० घट तुमने भर दिये।" यहां सुरा, आसव, मद्य, मधु, अरिष्ट आदि पद किस पदार्थ का बोध कराते हैं, इसका निर्णय वैद्यों को करना चाहिये। अश्विदेव वैद्य हैं, यह वेद में सुप्रसिद्ध है। वैद्यों के पास आसव के १०० घट भर कर रहे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। 'मधु' एक मीठा पेय है, यह मद्य नहीं है। 'सुरा' भाप से पुनः पानी बनाया जाता है, उसका नाम है (Distilled Water) शुंडायंत्रसे जो अर्क निकालते हैं, वह सुरा है। इसमें इस तरह जो मद्य बनता है, वह भी शामिल है, पर इसका केवल यही अर्थ है, यह बात नहीं है। वृष्टिउदक, भांपसे बना जल आदि भी इसके अर्थ हैं। अत. वैद्यों को इस सुरा तथा मधुके विषय में अधिक खोज करके निर्णय करना उचित है।

विश्पला को लोहेकी टांग लगाई।

विश्पलानामक राजपुत्री की एक टांग युद्ध में कट गयी थी। वह काटकर उस स्थानपर अश्विदेवोंने लोहेकी टांग लगा दी और उस स्त्रीको चलनेफिरनेयोग्य बना दिया, यह बात निम्नलिखित मन्त्रों में है—

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्॥
[ऋ० १।११६।१५]

सं विश्पलां नासत्यारिणीतम्। [ऋ० १।११७।११]

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम्। [ऋ० १।११२।१०]

प्रति जंघां विश्पलाया अधत्तम् [ऋ० १।११८।८]

धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू। [१।१८२।१]

युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः। [१०।३९।८]

अथर्ववेदी कुल में उत्पन्न (खेलस्य) खेल राजा की पुत्री विश्पला (धने हिते) युद्ध में गयी थी। उसकी एक टांग टूट गयी। अश्विदेवोंने इस को लोहे की टांग (आयसीं जंघां) लगा दी। जिससे वह (सर्तवे) चलनेफिरनेयोग्य बनी। इसकी यह जखम भी अश्वि-देवोंने ठीक बना दी, इसलिये अश्विदेवों को (विश्पला वसू) विश्पला को निवासयोग्य बनानेवाले इस अर्थ का नाम प्राप्त हुआ।

दधीची ऋषि को घोडे का सिर।

दधीची ऋषि को घोडे का सिर लगाने के उल्लेख वेद-मंत्रों में अनेक वार आ गये हैं देखिये-

दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वां अश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदी-मुवाच। [ऋ. १।११६।१२]

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।
[ऋ. १।११७।२२]

अथर्वकुल में दधीची ऋषि के लिये तुमने घोडे का सिर लगाया। इस अश्व के मुख से उस ऋषिने तुम दोनों को मधुविद्या सिखायी।

यहां अश्वका सिर ऋषि के मस्तक के स्थान पर लगा देने का उल्लेख है। मनुष्य के कण्ठ पर घोडे का सिर लग नहीं सकता, इसलिये यह उल्लेख विशेष अलंकार का सूचक है। अध्यात्मविद्या के संबंध में यह खोज करनेयोग्य वर्णन है। मधुविद्या दधीची ऋषि के पास थी, इन्द्रने यह विद्या दधीची को सिखायी थी। दधीची से यह विद्या अश्वि-देवोंको प्राप्त हुई। इस संबंध की कथा पुराणों में लंबी-चौडी है। यह सब वैदिक और पौराणिक सारस्वत एक-त्रित करके सब की मिलकर खोज करने का विचार है। स्वतंत्र लेखरूप से यह लेख प्रकाशित किया जायगा।

रेभका वर्णन।

रेभ के विषयमें अश्विदेवों की सहायता का वर्णन निम्न-लिखित मंत्रों में है-

याभी रेभं निवृतं सितं अद्भ्य.। [ऋ० १।११२।५]
विप्रुतं रेभं उदनि प्रवृक्तं उन्निन्यथुः।
[ऋ० १।११६।२४]

अश्वं न गूळ्हं अश्विना दुरेवैः ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु। सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिः न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि॥ [ऋ० १।११७।४]

रेभ ऋषिको दुष्टोंने जखमी करके जल में डुबाया था। उसको आपने ऊपर निकाला और उसके अवयव फिर से ठीक कर दिये। यह अश्विदेवों का कर्म बडा प्रशसनीय है और यह वैद्यकक्रिया के साथ संबंध रखता है। टूटे-फूटे अवयवों को पुनः ठीक करना यह कर्म वैद्यों का ही है।

वंध्या गौको दुधारू बनाया।

अश्विदेवोंने वंध्या गौको दुधारू बनाया है, इसका वर्णन अब देखिये-

याभिर्धेनुं अस्वं पिन्वथो नरा। [ऋ० १।११२।३]
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तां अपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्।
[ऋ० १।११७।२०]

युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि। [ऋ० १।११९।६]

हे अश्विदेवो! तुमने शयुके लिये वंध्या, कृश गौ को उपजाऊ और बहुत दूध देनेवाली बना दिया! यहां गौको पुष्ट करना, दुधारू बनाना और गर्भधारण के योग्य बनाने का उल्लेख है। औषधिप्रयोग से वंध्या को गर्भधारण-योग्य बनाना यह बडी भारी सफलताका चिन्ह है। तथा-

अश्विदेवोंने गाय में दूध उत्पन्न किया, इस विषय में निम्नलिखित मन्त्र देखनेयोग्य है-

युवं पय उस्रियायां अधत्तं पक्वं आमायां अव पूर्व्यं गोः।
[ऋ० १।१८०।३]

'आपने गौ में दूध धारण किया और अपक्व गौ में परि-पक्व दूध उत्पन्न किया।' अश्विदेवों के यत्न से गौ में उत्तम दूध बना है।

स्त्री का दान किया।

अश्विदेवोंने कइयोंको स्त्री देकर शादी कराई है देखिये-

याभिः पत्नीः विमदाय न्यूहथुः। [ऋ० १।११२।१९]
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन।
[ऋ० १।११६।१]
युवं शचीभिः विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम्॥ [ऋ० १।११७।२०]
युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं। [ऋ० १।११७।८]

विमद की शादी करने के लिये अश्विदेवोंने एक स्त्री उसको अर्पण की- तथा श्याव के लिये एक गौर वर्ण की सुन्दर स्त्री दी।

इस तरह अश्विदेव शादी करानेवाले दीखते हैं।

स्त्री को पति दिया।

घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्॥
[ऋ० १।११७।७]

घोषा नामक एक स्त्री अपने पिताके घरमें रहकर बढती जाती थी। इसके लिये एक उत्तम पति अश्विदेवोंने दिया और घोषा के लिये सुख दिया।

इस तरह पति को स्त्री और स्त्रीके लिये पति अश्वि-देवोंने दिया है।

अश्विदेवों का रथ।

अश्विदेवों का रथ पक्षियों के समान आकाशमें उडता था, यह बात निम्न लिखित मन्त्रमें लिखी है-

वरयन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि।

यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ [२६; ऋ० १।४६।३]

जब आप का रथ पक्षियों के समान आकाश में उडता है, तब आपके घोडे अन्तरिक्ष में गमन करते हैं। इनके आकाशगामी रथ को पक्षी जोते जाते थे। इस विषय में निम्न लिखित मन्त्र देखने योग्य है-

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतंगाः। ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ [१३०; ऋ० १।११८।४]

आपके रथ को (आकाशयान को, विमान को) शीघ्र-गामी पक्षी (आशवः पतंगाः युक्तासः) जोते गये हैं, वे श्येन पक्षी आप को इधर ले आवें। वे त्वराशील शीघ्र-गामी हैं।

इस से अश्वियों का रथ विमान जैसा आकाशगामी है यह बात सिद्ध होती है। इन का भूमिपर चलनेवाला भी रथ है। पर इन मंत्रों में इन के विमान का वर्णन है।

अश्विदेवों का रथ घोडे जोतने का नहीं था, इसलिये उसको ' अनश्व रथ ' कहा है, देखिये-

अनश्वं यामी रथमावतं जिषे। [६३; ऋ० १।११२।१२]

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः ॥

[१५७; ऋ० १।१२०।१०]

जिस को घोडे जोते नहीं जाते, ऐसा अश्विदेवोंका (अनश्वः रथः) अश्वरहित रथ है। इस से इस को पक्षी जोते जाते थे और वह आकाश में उडता था, यह बात स्पष्ट हो सकती है।

रथ को जोडे श्येन पक्षी।

अश्विदेवों के रथों अर्थात् आकाशयानों को पक्षी जोते रहते थे, इस विषय में ये मन्त्र देखिये-

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतंगाः। ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति। [१३०; ऋ. १।११८।४]

वेगवान् और उडनेवाले श्येन पक्षी तुम अश्विदेवों को वेग से यहां ले आवें। दिव्य गीधों के समान आकाश में उडनेवाले आप को हविष्यान्न के पास शीघ्र ले आवें।

यहां ' श्येनासः, पतंगाः, गृध्राः ' ये पद निःसंदेह पक्षीवाचक हैं। तथा ' आशवः, अप्तुरः ' ये पद विशेष गति के वाचक है। ' दिव्यासः ' पद आकाशगमन का सूचक है। ' रथे युक्ताः ' पदोंसे ये पक्षी आकाशयान में जोडे जाते थे, यह स्पष्ट हो जाता है। अर्थात् अश्विदेवोंके विमानों, हवाई जहाजों को गृध्र श्येन आदि वेगवान् पक्षी जोते जाते थे, यह बात इससे सिद्ध होती है।

इनके रथों को घोडे, गधे जोते जाते थे, इसका भी वर्णन अन्यत्र है।

उडनेवाली नौका = हवाई जहाज।

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवं आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम्। येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ [१९८; ऋ० १।१८२।५]

आपने तुग्रपुत्रके लिये अपने सामर्थ्य से पंखयुक्त नौका महासागर में बनायी, वह पक्षीके समान थी। उस नौका से उत्तम प्रकार उडनेवाले तुम दोनों सहजही से समुद्र से उडकर ऊपर चले गये।

यहां उडनेवाली नौका अश्विदेवोंने बनायी थी, यह स्पष्ट वर्णन है। यह जलमें तो चलती ही थी, पर आकाश में पक्षी के समान भी उडती थी। यही आकाशयान अथवा हवाई जहाज है। इन का रथ आकाश में घूमता है, इस विषय में देखिये-

उरु वां रथः परि नक्षति द्याम्। [२४८; ऋ० ४।४३।५]

आप का रथ आकाश में संचार करता है। अर्थात् यह हवाई जहाज है, इस में सन्देह नहीं है।

भुज्यु की सहायता।

तुग्र एक सम्राट् था, उस का पुत्र भुज्यु बडा वीर था। वह एक बार मरु देश के किसी शत्रु से लडने के लिये अपनी सेना के साथ समुद्र मार्ग से नौकाओं के द्वारा गया था। वहां उस का पराभव हुआ। वहां से भुज्युने अश्वि-

देवोंको सन्देश भेजा, अश्विदेव अपने विमानोंसे आकाश-मार्ग से आये, भुज्युको तथा उस की सेना को अपने विमानों में उठाकर भुज्यु को घर पहुंचाया। इस तरह युद्धोंमें- दर्याई युद्धों में भी अश्विदेवोंने सहायता की है, इनके वर्णन देखिये-

> वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाश-
> दाना । तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने
> जिगाय ॥ [७८; ऋ० १।११६।२]

(वीळु-पत्मभिः) बडे वेग से उडनेवाले, (आशु-हेमभिः) त्वरासे दौडनेवाले, (देवानां जूतिभिः) दैवी शक्तियों से प्रेरित होनेवाले यानों से युक्त (नासत्या) अश्विदेव बडे पराक्रम करनेवाले हैं। उनके वाहन से ही (आजा) इस युद्धमें (सहस्रं) हजारों शत्रु सैनिक (यमस्य प्रधने) यमराज के युद्ध में, सर्वस्वनाशक युद्ध में मारे जाकर (जिगाय) विजय मिला है।

इस मन्त्र में अश्विदेवों के वाहन बडे प्रबल वेग से आकाश में उडते थे, ऐसा लिखा है।

> तुग्रो ह भुज्युं अश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवां
> अवाहाः । तमूहथुः नौभिरात्मन्वतीभिः अन्तरिक्ष-
> प्रुद्भिरपोदकाभिः । [७९; ऋ. १।११६।३]

तुग्र नामक सम्राट्ने अपने भुज्युनामक पुत्रको [उदमेघे] समुद्र में- अर्थात् समुद्र के परतीरनिवासी शत्रु पर हमला करने के लिये- भेजा था। जैसा कोई [ममृवां] मरनेवाला [रयिं न] अपने धनकी आशा छोडता है, वैसेही तुग्रने अपने पुत्र की आशा छोड कर उसे शत्रु पर भेजा था। पश्चात् भुज्यु का पराभव हुआ और वह समुद्र में डूब मरने लगा। उस राजकुमारको [आत्मन्वतीभिः नौभिः] सामर्थ्य-वाली नौकाओंद्वारा [अन्तरिक्षप्रुद्भिः] जो नौकाएं आकाश में भी उडती थीं और [अप-उदकाभि] जलमें से भी जाती थीं, अश्विदेवोंने उसके घर पहुँचाया।

जो जहाज आकाश में उडते हैं, जल में जाते हैं और समय पर भूमि परसे भी जा सकते हैं, ऐसे जहाज अश्वि-देवों के थे।

> तिस्रः क्षपः त्रिरहातिव्रजद्भिः नासत्या भुज्युं ऊहथुः पतंगैः।
> समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः।
> [८०; ऋ. १।११६।४]

[तिस्रः क्षपः] तीन रात्री और [त्रिः अहा] तीन दिन तक [अतिव्रजद्भिः पतंगैः] अतिवेगसे दौडनेवाले पक्षि-सदृश यानोंसे भुज्यु को- अर्थात् उसके साथियों के साथ- [ऊहथुः] आकाशमार्गसे वहन किया। [आर्द्रस्य समुद्रस्य धन्वन् पारे] जलमय समुद्र के परे रेतीले प्रदेश में रहनेवाले राजा पर आक्रमण करने के लिये भुज्यु गया था। वहां से उसको [त्रिभिः रथैः] तीन रथों से उसको घर पहुंचाया। जिन रथों को सैंकडों चक्र लगे थे और छह घोडे अर्थात् वहन-साधन लगे थे।

तीन अहोरात्र चलनेवाले ये हवाई जहाज थे, ऐसा यहां कहा है। सैनिकों को लेकर ये वायुयान तीन दिन रात उडते हुए तुग्र के राज्य में पहुंचे।

> अनारम्भणे तदवीरयेथां अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
> यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमात-
> स्थिवांसम् ॥ [८१; ऋ० १।११६।५]

जिस समुद्र के (अनारम्भणे) आदि अन्त का पता नहीं लगता, (अनास्थाने) जिस समुद्र के मध्यमें ठहरने के लिए कोई स्थान नहीं है, और (अग्रभणे) जिस का ग्रहण भी नहीं हो सकता, ऐसे अथांग महासागरमें भुज्यु डूब रहा था। वहां अश्विदेव पहुंचे और उन्होंने अपने (शतारित्रां नावं) सौ बल्लियोंवाली नौकापर उस को (आतस्थिवांसं) बिठलाकर उस को (अस्तं ऊहथुः) अपने घर पहुंचा दिया।

यहां कहा है कि अथांग समुद्र में अश्विदेवों के जहाज जाते थे। वे आकाश में भी उडते थे और अनेक सैनिकों को बिठला सकते थे।

> युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना।
> युवं भुज्युं अर्णसो निः समुद्राद् विभिरूहथुः ऋज्रे-
> भिरश्वैः ॥ [११५; ऋ० १।११७।१४]

हे अश्विदेवों ! आप (तुग्राय) राजा तुग्र के लिये (पूर्व्येभिः एवैः) पूर्व समय में की सहायताओं से प्रिय हो चुके थे ही, पर आप (पुनः) फिर भी (मन्यौ अभवतं) मान्य हो गये हैं, क्योंकि (भुज्युं) तुग्र के युवराज राजपुत्र भुज्युको (अर्णसः समुद्रात्) बडे महासागर में से (ऋज्रेभिः अश्वैः) बडे वेगवाले अपने (विभिः) पक्षि-सदृश वाहनोंसे (ऊहथुः) ऊपर उठाया और घरको पहुंचाया।

यहां बताया है कि, अश्विदेवों की पहले से ही मित्रता तुग्र के साथ थी। पर अब पुत्रको बचाने के कारण वह मित्रता सुदृढ हो गई है। पहले की अपेक्षा अब वह मित्रता अधिक बढ चुकी है।

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ। यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यम् ॥
[१४१; ऋ० १।११९।४]

आपने (भुरमाणं भुज्यं) जलों में डूब मरनेवाले भुज्यु नामक राजपुत्रको (विभिः गतं) उडनेवाले पक्षियों जैसे यानोंसे उठाकर (स्वयुक्तिभिः) अपनी खास युक्तियों से (पितृभ्यः आ निर्वहन्ता) पिताके पास लाया। आप (वृषणा) बलवान् हैं और (विजेन्यं यासिष्ट) अतिदूर देशतक आप पहुंचे थे और भुज्युको आपने वहांसे लाया था।

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुं ऊहथू रजोभिः। अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिः अर्णसो निरुपस्थात् ॥
[३११; ऋ० ६।६२।६]

. (तुग्रस्य सूनुं भुज्युं) राजा तुग्र के पुत्र भुज्यु को (निरुपस्थात् अर्णसः समुद्रात् अद्भ्यः) अथांग महासागर के बडे जलों से (अरेणुभिः रजोभिः) जहां धूली नहीं है, ऐसे अन्तरिक्षसे- आकाशमार्गसे- (ऊहथु.) उठाकर (योजनेभिः) विविध प्रकारकी योजनाओंसे युक्त (विभिः) पक्षियों जैसे (पतत्रिभिः) पक्षिरूप यानों से तुमने उसके घर पहुंचाया।

युवं भुज्युं अवविद्धं समुद्र ऊहथुरर्णसो अस्रिधानैः। पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिः अश्विना पारयन्ता ॥
[३५३; ऋ० ७।६९।७]

आपने [समुद्रे अवविद्धं भुज्युं] समुद्र में जखमी होकर पडे हुए भुज्यु को [अस्रिधानैः] जिन में कुछ भी न्यूनता नहीं है, सब सुखसाधनों से जो परिपूर्ण हैं, [अश्रमैः] जिनमें बैठनेवालोंको बिलकुल श्रम नहीं होते, [अव्यथिभिः] जिनमें किसी को व्यथा नहीं होती, ऐसे [पतत्रिभिः] पक्षि जैसे यानों से [अर्णसः उत् ऊहथुः] समुद्र से ऊपर उठा कर अनेकानेक युक्तियों से [पारयन्ता] समुद्र के पार करके घर पहुंचा दिया।

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईंखितम्। यातमच्छा पतत्रिभिः नासत्या सातये कृतम्।
[६३१; ऋ० १०।१४३।५]

उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे। निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः। [३४४; ऋ. ७।६८।७]

आपने डूबनेवाले भुज्युको समुद्र से उठा कर [रजसः] अन्तरिक्ष के मार्ग से पार पहुंचा दिया। आप [पतत्रिभिः] पक्षी जैसे आकाश-यानों से वेगसे वहां पहुंचे थे।

आपने समुद्र के बीच में जो कठिन अवस्था में पडा था, उस भुज्यु को मित्रभावसे उठा कर सुरक्षित घर पहुंचाया।

इन मंत्रों से पता लगता है कि अश्विदेवों के पास पक्षियों के सदृश आकाश में उडनेवाले आकाश-यान थे। वे तीन अहोरात्र अतिवेग से चलाये जाते थे और उन में सैनिकों को बिठलाना और इष्ट स्थान पर पहुंचाने का कार्य किया जाता था।

अश्विदेवों की यह विद्या मननपूर्वक आलोचना करने-योग्य है।

इस तरह अश्विदेवों के कर्तृत्व का वर्णन वेद-मंत्रों में है। अश्विदेवता के सब मंत्रों का मननपूर्वक अध्ययन करने पर तथा इनका जो वर्णन पुराणों में है वह देखने के बाद, तथा दोनों की संगति लगाने के बाद अश्विदेवों के संबंध में ठीक ठीक पता लग सकता है।

ये देवता उषाके पूर्व आकाश में तारकारूप से उगते हैं, ऐसा भी वर्णन है। ये दो साथ साथ रहते हैं। अस्तु। दैवत-संहितांतर्गत अश्विनौ देवताका अध्ययन होनेके लिये यह मंत्रसंग्रह सहायक होगा, ऐसी हमें आशा है।

स्वाध्याय-मण्डल, औंध
ता० ३०।५।४३

निवेदनकर्ता
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वेदकालीन ज्योतिर्गणित ।

(लेखक- श्रीमन्त राजकुमार माधवराव भवानराव पन्त, B. Sc.
श्री औंधनरेश के सुपुत्रद्वारा लिखित, औंध)

ज्योतिर्गणित बिना कोष्टकों की सहायता के जान लेना असंभव ही है, इसलिए प्रारंभ में कुछ महत्वपूर्ण कोष्टकों की जानकारी प्राप्त करना उचित जान पडता है।

(१) पहला कोष्टक ।

कलियुग ४३२००० मानवी वर्ष
द्वापरयुग ८६४००० ,, वर्ष
त्रेतायुग १२९६००० ,, वर्ष
कृतयुग १७२८००० ,, वर्ष
} = ४३,२०,००० मानवी वर्ष = १ महायुग

इस भाँति के १००० महायुगों के बीत जानेपर ब्रह्मदेव का एक दिन समाप्त होता है और रात्रि के भी उतने ही महायुग होते हैं- अतः—

२००० महायुग = ८,६४,००,००,००० मानवी वर्ष = ब्रह्मदेव का एक अहोरात्र = २ कल्प। ध्यान में रहे कि, एक कल्प के मन्वन्तरनामक १४ विभाग किये गये हैं। इसलिये एक मन्वन्तर में १००० महायुग ÷ १४ = ७१$\frac{३}{७}$ महायुग होते हैं।

१ मन्वन्तर = [७१$\frac{३}{७}$ महायुग] = लगभग ३०,८५,७१,००० मानवी वर्ष।

(२) दूसरा कोष्टक ।

एक सेकंड में १,८६,००० मील जाना प्रकाश का वेग है। इस से ज्ञात होता है कि, एक वर्ष में प्रकाश लगभग ५९,००,००,००,००,००० मील जाता है। इसलिए—

५९,००,००,००,००,००० मील = १ प्रकाशवर्ष

अर्थात् १ शंकु मील = १·७ प्रकाश वर्ष (लगभग)
इसलिए १ जलधी मील = १७ ,, ,,
१ अन्त्य मील = १७० ,, ,,
१ मध्य मील = १७०० ,, ,,
१ परार्ध मील = १७००० ,, ,, हैं।

(३) तीसरा कोष्टक ।

४ हाथ = १ दंड
२००० दंड = १ कोस
४ कोस = १ योजन
४ योजन = १ महायोजन

हाथकी साधारण लंबाई ध्यान में रखे, तो वर्तमानकाल में प्रचलित अनुपात से १ योजन में लगभग १० मीलों का समावेश होता है, अतः

१० मील = १ योजन
४० मील = ४ योजन } = १ महायोजन

यदि ऐसा मान लें कि, वेदकालमें आकाशस्थ ग्रहों एवं नक्षत्रों की लंबाई महायोजनोंद्वारा नापी जाती थी, तो

(एक महायोजन = ४० मील)

१ शंकु महायोजन = ६८ प्रकाशवर्ष
१ जलधी महायोजन = ६८० ,, ,,
१ अन्त्य ,, ,, = ६८०० ,, ,,
१ मध्य ,, ,, = ६८००० ,, ,,
१ परार्ध ,, ,, = ६८०००० ,, ,,

आजकल नूतन वर्षारंभ के दिन जिस समय पुरोहित पंचांग पढना शुरु करता है, तब वह निम्नलिखित वाक्यों का उच्चारण करता है—

" श्रीसूर्यसिद्धांत मत के अनुसार, विश्व की उत्पत्ति, रक्षा एवं लय के कारणीभूत श्रीमहाविष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मदेव की आयु १०० वर्ष है। ५० वर्ष बीत चुके हैं। अब एक्कावनवे वर्ष के पहले मास के प्रथम पक्ष के प्रारंभिक दिन के ६ मन्वन्तर हो चुके और सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर के २७ महायुगोंके पश्चात् २८ वाँ महायुग चल रहा है...... " इत्यादि।

इन ६ मन्वन्तरों के वर्षोंमें २७ महायुगों की वर्षसंख्या मिला दें, तो करीब १,९७,००,००,००० वर्ष होते हैं।

अब देखना चाहिये कि, आधुनिक वैज्ञानिकों की रायमें पृथ्वी को अस्तित्व में आये कितने वर्ष बीतगये हैं।

" Worlds Without End " नामक ग्रन्थ में लेखक लिखता है—

The oldest rocks whose ages have been definitely determined are found in Manitoba and South Dacota, the age in each case being about 1700000000 years.

इस से ज्ञात होता है कि, कइयों की राय में पृथ्वीको उत्पन्न हुए कमसे कम १७० करोड वर्ष और अधिक से अधिक ३ अब्ज वर्ष बीत गये होंगे, लेकिन कुछ अन्य विज्ञानवेत्ता दूसरे ही प्रमाणोंके आधारपर यूं बतलाते हैं कि, पृथ्वीका जीवनकाल.पाँच करोड वर्षों से ज्यादह न होगा। परन्तु ध्यानमें रखनेयोग्य बात है कि, हमारे वैदिक विज्ञानवेत्ता निश्चित रूप से कहते हैं कि, पृथ्वीके जन्म के पश्चात् १,९७,००,००,००० वर्ष बीत गये हैं, क्योंकि उनकी राय में इतने वर्षों के पूर्व पृथ्वी, मंगल, बुध, गुरु, शनि, शुक्र आदि नौ ग्रह एक कतारमें आ गये थे। अर्थात् ही इन सबों का आकर्षण सूर्यपर एक ही समय हुआ, इसलिए फिर से सूर्य में लहरें उठने लगीं, जिस से सृष्टि का पुनः नया आविर्भाव हुआ। भास्कराचार्यजीके ग्रन्थ में दर्शाये ढंगसे हर कल्पमें यह प्रलय एक बार हुआ करता है, जब कि, पृथ्वी सभी ओरसे १ योजन ज्यादह, बडी होती है; मतलब यह कि, पृथ्वी बहुत पुरानी है, परन्तु भूपृष्ठपर पाये जानेवाला १० मील ऊँचाईका स्तर १,९७,००,००,००० वर्ष पुराना है, सच झूठ कौन बताये, हाँ इतनी एक बात बडी आश्चर्यकारक है कि, १,७०,००,००,००० वर्ष और १,९७,००,००,००० वर्ष के मध्य अन्तर नगण्यसा है।

प्रत्येक बार एक एक अंक के पश्चात् पाँच पाँच या दस दस शून्य लिखने की अपेक्षा अधिक सुगम रीतिसे उन्हीं शून्योंको हम दिखा सकते हैं। उदाहरण के लिए १०० = $१०^{२}$; १०००० = $१०^{४}$ याने एक अंक के पश्चात् जितने बार शून्य लिखते हों, उस का सूचक अंक १० के ऊपर लिखना। उसी प्रकार, ३००,००,००० = $३×१०^{५}$ और ऊपर बतलायी हुई संख्या १,७०,००,००,००० इसी भाँति $१७×१०^{८}$ बतायी जा सकती है अथवा ब्रह्मदेव के अहोरात्रके वर्षों की संख्या ८६४,००,००,००० को $८६४×१०^{७}$ यों दर्शा सकते हैं। इसी प्रणाली से ब्रह्मदेव का एक वर्ष = $३×१०^{१२}$ लगभग वर्ष होते हैं, इसलिये ब्रह्मदेव के ५० वर्ष = $१५×१०^{१३}$ वर्ष होते हैं।

अच्छा, योरपीय वैज्ञानिक इस विश्व को उत्पन्न हुए कितने वर्ष बीत गये हों, इस बारेमें कौनसी धारणा रखते हैं, सो भी देख लीजिये—

Hundred Years of Astronomy नामक ग्रन्थ में लेखक का कथन है कि—

It seemed well established that the time-scale of the universe lay between a period of the order 10^{13} and a period of the order 10^{11} years.

From the fairly accurate weights available of two extra galactic nebulae..., it is calculated by Jeans that the atoms in one ... ... must have an average life period of $8×90^{13}$ years and the other $12×10^{13}$ years ... ...

(Wonderful Universe)

Jeans says—

" Indeed we can probably assign an upper limit to its (Universe) age, say, some round number as $20×90^{13}$ years. "

सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में दो विभिन्न धारणाएँ प्रचलित हैं, जिन में एक कल्पना के अनुसार सृष्टि का जीवन $१०^{१७}$ वर्ष माना जाता है, तो दूसरी रायके अनुसार विश्व की आयु $१०^{१३}$ वर्ष निश्चित की जाती है। किसी अन्य पुस्तक में यहाँ तक लिखा है कि, सृष्टि की उत्पत्ति हुए अधिक से अधिक $२×१०^{१४}$ वर्ष बीत गये हों, तो भी असम्भव नहीं। जान पडता है कि, हमारे यहाँ के ज्योतिर्विदोंने कुछ इसी तरह के सूर्यसिद्धान्त परसे विश्व की आयु निर्धारित करने की चेष्टा की हो।

भारतीय पंचांग के अनुसार ब्रह्मदेव का जीवनकाल १०० वर्षतक का माना जाता है और ५० वर्ष समाप्त हो चुके याने और भी विश्व ब्रह्मदेव के ५० वर्षों अथवा १५×१०^{१३} वर्षों तक अस्तित्वमें रहेगा। योरपका विख्यात गणितवेत्ता सर ऑर्थर् एडिंगटन (Sir Arther Eddington) अपनी Nature of the Physical World नामक पुस्तक में लिखता है कि—

The future is not so restricted and the sun may continue as a star ... ... for 5×10^{13} or 50×10^{13} years,

यदि यह बात ध्यान में रखी जाय कि, सूर्य तथा सृष्टि की उत्पत्ति और लय एक ही समय होनेवाला है, तो अपने १५×१०^{१३} अङ्कों के कारण विचारशील पाठकों को अवश्य आश्चर्य प्रतीत होगा।

अब सोचना ठीक होगा कि, यह Island Universe Theory वास्तव में क्या है। यह जो अन्तराल है, उसे विश्व नाम दिया जाय, तो समूचा विश्व एक फैला हुआ महासागर है और जैसे समुद्र में छोटे छोटे करोडों टापू पाये जाते हैं, वैसे ही इस विश्व में कोट्यवधि भुवन हैं। अपनी सूर्यमाला जिस आकाशगंगा में है, उस आकाशगंगा के साथ सभी नक्षत्र मिलकर एक जगत् है। दूसरा जगत् Andromeda Nebula है। जैसे सूर्यमालिका के सभी ग्रह सूर्य के इर्दगिर्द घूमा करते हैं, उसी प्रकार इस हरएक जगत् के विभिन्न नक्षत्र प्रत्येक जगत् के केन्द्रबिन्दु के चारों ओर फिरते हैं, अर्थात् अपने जगत् के मध्यके इर्दगिर्द अन्य नक्षत्रोंके समान ही सूर्य भी घूम रहा है। ऐसे मध्यके इर्दगिर्द घूमनेके लिए सूर्य को कितने वर्ष लगेंगे, यह देखना ठीक होगा।

Worlds Without End ग्रन्थ में लेखक का कथन है कि, "The time of complete rotation in the neighbourhood of the Sun is about 225×10^{6} years." परन्तु Hundred Years of Astronomy पुस्तक में इस विषय पर यूं लिखा है कि, "It is found that the time necessary for the Sun to make one complete circuit of the galaxy is about 250×10^{6} years, हाँ, यह समय पृथ्वीपर से दिखाई देनेवाले नक्षत्रों की हलचल से निश्चित किया गया है। जिस अनुपातमें सूर्यमाला अपने जगत् के मध्यबिंदु से न्यूनाधिक अन्तर पर है, ऐसा ज्ञात होगा। उसी अनुपातमें यह समय भी न्यूनाधिक मानना चाहिए। कल यदि कोई यूं बताये कि यह समय ३०८×१०^{३} वर्षों का है, तथापि योरपीय वैज्ञानिक इस से इनकार नहीं कर सकते, क्योंकि भलेही २२५×१०^{६} या २५०×१०^{६} अथवा ३०८×१०^{६} वर्ष हों, ये सभी काल अत्यन्त विस्तीर्ण हैं और ये सिर्फ नक्षत्रों की अतीव सूक्ष्म गतिपर से निर्धारित किये हैं, इस कारण आसानी से विभिन्नता दीख पडेगी, जो कि बिलकुल स्वाभाविक है।

ऐसा प्रतीत होता है कि, इसी कारण से भारतीय वैदिक ज्योतिर्विदोंने ब्रह्मदेव के दिन के १४ विभाग माने थे, क्योंकि हम ऊपर देख चुके हैं कि, १ मन्वन्तर के ३०८×१०^{६} वर्ष होते हैं। यह संभव नहीं कि वे ४ या १० का कोष्टक भली भाँति जानते न थे कि कैसे विभाग किये जायँ। अतः ऐसी कल्पना करना ठीक है कि, वैदिक ज्योतिर्विद जानते थे कि, सूर्य इस जगत् के मध्यके इर्द-गिर्द ब्रह्माजी के एक दिन में १४ बार घूम लेता है। सूर्य की केन्द्र के इर्दगिर्द एक प्रदक्षिणा को उन्होंने 'मन्वन्तर' नाम दिया हो।

ऐसा माननेपर कि वैदिक गणितशास्त्रवेत्ता इस बातसे परिचित थे कि, सूर्य एक मध्यबिन्दुके चारों ओर घूमता है, यह अनुमान करना कठिन नहीं कि, उन्होंने उस जगत् का घेरा और इस में विद्यमान नक्षत्रों के अन्तर भी नापे होंगे। इसलिये ठीक होगा कि, हम देख लें कि, अन्तरगणना के बारेमें वे क्या जानकारी रखते थे।

प्रारंभिक कक्षासे हमें सिखाया जाता है कि, गणना में कोटि, दशकोटि, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शंकु, जलधी, अंत्य, मध्य, परार्ध, ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं; लेकिन प्रत्यक्ष बडे बडे व्यवहारों में भी अब्ज से अधिक संख्या की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है। इसलिये सन्देह उठ खडा होता है कि, प्राचीन आर्यों को १८ स्थानों को बतलाने की क्या जरूरत पडी हो? इस का निवारण बस इसी से हो जाता है कि, प्राचीन

आर्य अपने जगत् की लंबाई-चौडाई से ठीक परिचित थे।

पुराने ग्रन्थोंमें अंकों को दर्शाने के लिए कुछ नामोंका उपयोग किया जाता था, जैसे अश्वि = दो; ग्रह = नौ, दिशा = दस इत्यादि। मैं समझता हूँ कि हरएक नक्षत्र के अर्थ से उस के अन्तरको जोड देना निरर्थक है, इस कारण से जिनके अर्थ प्रत्यक्ष और बिलकुल सरल एवं बिना खींचतानी के दीखते हैं, उतने ही नाम मैं इधर विचारार्थ लिख देना ठीक समझता हूँ।

त्रि-शंकु- इसे Beta Crusis नाम दिया गया है और वह सूर्यमालिका से ठीक (६८ × ३) २०४ प्रकाश-वर्ष दूर है। ऊपर के तृतीय कोष्टक से ज्ञात होगा कि, तीन शंकु महायोजनों का अन्तर ठीक २०४ प्रकाशवर्ष होता है। इतने दूरवर्ती तारा का अन्तर नापा, इसलिये उस काल के नरेशका नाम ' त्रिशंकु ' पडा हो।

अब, जिस ' मध्य ' के चतुर्दिक् समूची आकाशगंगा और अन्य सभी नक्षत्र घूमते हैं, वह मध्य एक विद्वान की राय में जगत् के छोर से लगभग ६५००० प्रकाशवर्ष अन्तरपर है और इस संख्या को तृतीय कोष्टक में दर्शाये ढंग से महायोजन में रखें, तो १ मध्य महायोजन संख्या उपलब्ध होती है। मन में हठात् यह विचार आता है कि स्यात् वैदिक ज्योतिर्विद जानते हों कि, अपने जगत् का मध्यबिन्दु मध्य महायोजन दूरीपर विद्यमान है, अतः इस संख्या को वे मध्य नाम से पुकारने लगे।

इसके पश्चात् अपने जगत् के अत्यन्त निकट विद्यमान दूसरा जगत् अर्थात् ही Andromeda Nebula है, जो सूर्यमंडलसे ८,००,००० प्रकाशवर्ष दूर है, अर्थात् यह तृतीय कोष्टक के अनुसार परार्ध महायोजन से भी अधिक दूर है, या ॲन्ड्रोमेडा जगत् अपने जगत् के समान ही लंबा, चौडा और ऊँचा फैला हुआ हो। इतना मानने पर यों कहा जा सकता है कि, उस जगत् का प्रारंभ परार्ध महायोजन से ले आगे हुआ है और मेरी राय में वैदिक ज्योतिर्विदोंने भी परार्ध महायोजनों के पश्चात् 'पर-अर्ध' माने दूसरा अर्ध शुरु हुआ, इसलिये इस संख्या को परार्ध नाम दिया हो।

ये सभी सरल ढंग से प्रतीत होनेवाले अर्थ हैं। परन्तु अधिक क्लिष्टता का स्वीकार करके अर्थ करनेपर नक्षत्रों के नामोंपर से उनके अन्तर और महापद्म, शंख आदिकों के भी अर्थ बतलाये जा सकते हैं। पुराने ग्रन्थों में समय-मापन के लिए सूक्ष्मातिसूक्ष्म कोष्टक दिये हैं, जिनके इसी भाँति अर्थ लगाये जा सकते हैं। निःसन्देह, यूं मानने में कोई आपत्ति नहीं कि वेदकालीन ज्योतिषशास्त्रवेत्ता इतनी सभी बातों से परिचित थे।

नरेश त्रिशंकु के समय ऋषि विश्वामित्र याने **' विश्व का मापन करनेवाला पण्डित '** था, सो सभी जानते हैं। संभव है कि विश्वामित्र के उपरान्त इस शास्त्र में कोई इतनी गहराईतक न पहुँच पाया हो, अतः अपना ज्योतिषशास्त्र दन्तकथा में परिणत हो गया हो।

(श्री० ना० वि० गोलीवडेकर, औंध)

पाश्चात्य विद्वानोंने हालमें ही खगोलशास्त्र एवं भूगोल-शास्त्र में जो अनेक आविष्कार बताये हैं, उन्हें पढकर या सुनकर हम अचम्भे में आते हैं और इन पण्डितों के ज्ञान तथा सुदीर्घ परिश्रम के फलस्वरूप अत्यन्त आदर का सृजन हमारे अन्तस्तल में होता है। यदि ऐसा प्रतिपादन करना शुरू किया जाय कि, इन गवेषणाओं के समान ही और अक्षरशः वे ही खोज भारतीय विद्वान् ऋषिओंने सहस्रों वर्ष पूर्व लिख रखे थे, तो हँसी उडाई जाती है कि, यह तो सनातनियों का वृथाभिमान है, और कुछ नहीं। इस मखौल का ठीक ठीक उत्तर शान्ततापूर्वक उदाहरणसहित संक्षेप में उपर्युक्त लेख में दिया गया है।

उक्त लेख में प्रतिपादित सात बातें, (१) त्रिशंकु, (२) शंकु, (३) मध्य, (४) परार्ध, (५) मन्वन्तर, (६) पृथ्वीका उत्पत्तिकाल और आयु तथा, (७) विश्वामित्रका अर्थ आधुनिक पंडितों के लिए सुतरां मननीय हैं, इस में तनिक भी सन्देह नहीं।

वर्तमानकाल में पाश्चात्य गवेषणकर्ताओं ने त्रिशंकु नक्षत्र का सूर्यमालिका से जो अन्तर निर्धारित कर प्रसिद्ध किया है, वह ' त्रिशंकु ' नामसे ही स्पष्ट होता है, अर्थात् वह अन्तर तीन शंकु महायोजन है। उसी प्रकार मन्वन्तरों की संख्या चौदह ही क्यों ? इस प्रश्न का भी समर्पक उत्तर देखकर हरएक के मन के अन्तस्तल में भारतीय आर्यों के ज्ञान के संबंध में आदरातिशय उत्पन्न होगा ही।

१ मन्वन्तर = ७१$\frac{3}{7}$ महायुग, यह बात भी विचारार्ह है।

(मराठी पुरुषार्थ से अनुदित)

षड्दर्शन-भूमिका।

(लेखक- पं० वासुदेवशर्मा, शास्त्राचार्य, साहित्यभूषण, स्वाध्याय-मण्डल, औंध)

विद्या और अविद्या को दो वाक्यों में इस प्रकार कह सकते हैं—

१. सद्दर्शनं विद्या, २. असद्दर्शनमविद्या

अर्थात् इन्द्रियादि साधनों से ठीक देखना विद्या और विपरीत देखना अविद्या है। वास्तव में ज्ञान का साधन दर्शन है। जो जिस वस्तु को जैसा देखता है, वैसी ही अपनी धारणा बनाता है। धारणा के ऊपर ही हमारे सारे व्यवहार चलते हैं। वेदने विद्या का फल किन को प्राप्त होता और किन को नहीं होता, यह बताते हुए कहा है-

> उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न
> शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव
> पत्य उशती सुवासाः॥ [ऋ. १०।७१।४]

अर्थ- (उत) और (त्वः) एक मनुष्य (पश्यन्) देखता हुआ (वाचम्) वाणी को (न ददर्श) नहीं देखता (उत) और (त्वः) दूसरा एक (शृण्वन्) सुनता हुआ (एनाम्) इसे (न शृणोति) नहीं सुन पाता। अर्थ न जाननेके कारण इनका पढ़ना और सुनना व्यर्थ जाता है। (उतो) पर यह वाणी (विद्या) (त्वस्मै) एक अर्थज्ञ के सम्मुख अपना (तन्वम्) स्वरूप इस प्रकार (वि सस्रे) खोल देती है, (इव) जैसे (उशती) पतिको चाहती हुई (सु-वासाः) ऋतु-स्नान के पश्चात् सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाली (जाया) पत्नी (पत्ये) पति के लिये।

इस मन्त्र से स्पष्ट हो गया, विद्या या ज्ञान का साधन दर्शन है। श्रवण आदि ज्ञान के साधन भी इसीके अन्तर्गत आ गये। जब वेद को बहुत विषय संक्षेप में कहना होता है, तो उनमें से दो एक का नाम पढ़ देता है, यहाँ उसने दर्शन और श्रवण जो नेत्र और श्रोत्रेन्द्रिय के कार्य हैं, दो की गणना कर के घ्राण, रसना आदि की ओर संकेत कर दिया है। इस संसार को विद्वान् और मूर्ख सभी देखते हैं, पर दोनों में दर्शन का भेद है। दर्शन-भेदके कारण ही विद्वान् को संसार का अधिक ज्ञान होता है, मानों प्रत्येक ज्ञान उसके आगे खड़ा नाचता है और मूर्ख मुग्धका सदा आँखें फाड़ फाड़ कर देखता है, पर पता कुछ नहीं मिलता। वेद ने इस दर्शन को इन शब्दों में प्रकट किया है-

> चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा
> ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति
> तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥ (ऋ. १।१६४।४५)

अर्थ- (वाक्परिमिता पदानि) वाणी के मापे हुए पद (चत्वारि) चार हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। (ये मनीषिणः ब्राह्मणाः) जो मनीषी ब्राह्मण हैं, वे (तानि) उन चार पदों को (विदुः) जानते हैं। इस वाणी अर्थात् ज्ञान के, (गुहा) गुहा में (त्रीणि निहिता) तीन छिपे हुए पद प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान (न इङ्गयन्ति) नहीं हिलते-डुलते। (वाचः) वाणी का (तुरीयम्) चौथा पद (मनुष्याः) सब मनुष्य (वदन्ति) बोलते हैं।

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ये चार प्रकार के ज्ञान होते हैं। इनके साधन भिन्न भिन्न हैं। मनुष्यों में श्रेष्ठ विद्वान् को ही इन चारों साधनों का सम्यक् ज्ञान होता है और वही इनका निर्दोष प्रयोग कर सकता है। साधारण लोग प्रायः शब्द-ज्ञान पर आश्रित होते हैं, अर्थात् अपने पूर्वजों से जिस पदार्थ के विषय में जो गुण-दोष और व्यवहार सुन रखा है, उसी पर चले आते हैं, स्वयं निश्चय करने का साधन उनके पास नहीं।

कोई भी भाषा ऐसी नहीं, जिस में इन दर्शनों से काम न लिया गया हो। वेद सब भाषाओं की जननी है, अतः सर्वप्रथम प्रत्यक्ष अनुमान आदि दर्शनों का प्रयोग उसी में हुआ। यथा—

> यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि
> सद्यः। प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पा-
> च्चरथाय जीवम्॥ (ऋ. ४।५१।५)

अर्थ- हे (उषसः देवीः) उषः-देवियो! (यूयं हि) तुम ही (ऋतयुग्भिः अश्वैः) नियमसे जुड़ जानेवाले घोड़ों

को रथ में जोड (ससृजम्) सोते हुए (द्विपात्-चतुष्पाद् जीवम्) दो पाँववाले और चार पाँववाले जीवों को (चराय) चलने-फिरने के लिये (प्रबोधयन्तीः) जगाती हुई (सद्यः) तुरन्त ही (भुवनानि) संसार पर (परिप्रयाथ) छा जाती हो ।

यहाँ उषःकाल में सब का जागना प्रत्यक्ष है ।

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुहचिद् दिवेयुः ॥ (ऋ. १।२४।१०)

अर्थ- ये जो नक्षत्र धरे हुए ऊँचे रात में दिखाई देते हैं, कहाँ दिन में चले जाते हैं। यहाँ नक्षत्रों का रात में दीखना और दिन में न दीखना कहीं चले जाने के अनुमान का साधक है।

उद्गातेव शकुने साम गायसि ॥ (ऋ. २।४३।२)

अर्थ- हे शकुने ! तू उद्गाता के समान साम गाता है। इस स्तुति से उपमानद्वारा शकुनि के स्वरूप का ज्ञान होता है कि; वह भी साम गानेवाला है, पर उद्गाता नहीं है ।

द्वे सृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् । (ऋ. १०।८८।१५)

अर्थ- मैं ने पितर, देव और मनुष्योंके आवागमन के दो मार्ग सुने हैं।

यहाँ दो मार्गों का ज्ञान श्रवण= शब्द से हुआ है। ये ही दर्शन षड्दर्शनों में प्रमाण नाम से प्रसिद्ध हैं। इन दर्शनों का वेद में प्रयोग हुआ है, अतः ये वैदिक हैं। इनके अस्वीकार से वेद के बहुतसे ज्ञानों से हाथ धोना पडेगा। हम तो वेद को ईश्वर-रचित मानते हैं, अतः कह सकते हैं, इन सारे प्रयोगों का प्रयोजन मनुष्यों को दर्शन-शास्त्र सिखाना है। वास्तव में ईश्वररचित होने से वेद का सारा ज्ञान सत्य है, पर जो लोग वेद को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते, वे केवल प्रत्यक्ष का आश्रय लेकर अनुमित और श्रुत ज्ञान को सत्य नहीं सिद्ध कर सकते।

वैदिक लोग जिन दर्शनग्रन्थों को मानते हैं, वे छः हैं, अतः उनका नाम षड्दर्शन प्रसिद्ध है। ये आस्तिक दर्शन भी कहे जाते हैं। मैं पहले कह आया हूँ, दर्शन शब्द का अर्थ देखना है, पर दर्शन शब्द शास्त्र अर्थ में भी रूढ हो गया है। जिसके द्वारा सत्य-असत्य देखते हैं, वे दर्शन हैं, वे शास्त्र ही हैं। दर्शन, शास्त्र और अनुशासन आदि शब्द एकार्थवाची हैं। इतना होनेपर भी दर्शन शब्द षड्दर्शनों में रूढ हो गया है, इसका कारण यही है कि, इनमें प्रमाणों द्वारा अर्थ का परीक्षण, अन्वीक्षण अथवा दर्शन किया जाता है। इन दर्शनों का एक नाम न्याय-विद्या भी है। न्याय-दर्शन में वात्स्यायन मुनि न्याय का अर्थ 'प्रमाणैरर्थ-परीक्षणं न्यायः' 'प्रमाणों द्वारा अर्थ का परीक्षण' करते हैं। परि-ईक्षण और दर्शन का अर्थ एक ही है। नास्तिक-दर्शनों ने भी प्रमाणों का आश्रय किया है, अतः वे भी दर्शन कहलाते हैं। अब दर्शन का निश्चित अर्थ निकला **प्रमाणों द्वारा अर्थ की परीक्षा करनेवाला ग्रन्थ।**

छहों दर्शन प्रमाणोंद्वारा अपने अपने अर्थकी परीक्षा करते हैं, अतः उनका दर्शन नाम समुचित है। जो अभी सम्मुख नहीं आया अथवा जो निर्णीत अर्थ है, उसमें न्याय प्रवृत्त नहीं होता, अपितु सन्दिग्ध अर्थमें और तर्क भी अपरीक्षित विषय में ही कारणपूर्वक ऊह करने का नाम है, अतः इन दर्शनों को तर्क-शास्त्र भी कहते हैं। कोई दर्शन बिना तर्क के नहीं चल सकता, अतः उसका तर्क नाम भी सम्यक् ही है।

दर्शन छः हैं। उनके नाम पूर्वमीमांसा, उत्तर-मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, सांख्य और योग हैं। पूर्वमीमांसा केवल मीमांसा और उत्तर-मीमांसा वेदान्त नाम से प्रसिद्ध है। वेदान्त और मीमांसा के रचयिता गुरु-शिष्य थे, अतः इन दोनों व्यास और जैमिनि के दर्शनों के नाम साथ साथ लिये जाते हैं। कणादकृत वैशेषिक और गोतमकृत न्याय का विषय एक होनेसे ये भी एक साथ गिने जाते हैं। कपिल-मुनि-कृत सांख्य और पतञ्जलि मुनिकृत योग का विषय भी प्रायः मिलता है। ये छहों दर्शन इन तीन द्विकों में विभक्त हैं। इन दर्शनों पर भिन्न आचार्यों के भाष्य हैं और भिन्न भिन्न वाद होने से इनका भिन्न भिन्न सम्प्रदाय बन गया है। नैयायिकों में ही अनेक वाद और सम्प्रदाय हैं, तो एक एक दर्शन का एक एक सम्प्रदाय कौनसी आश्चर्य की बात है।

नैयायिक वेदान्तियोंकी, सांख्य वैशेषिकोंकी निन्दा करते रहते हैं। इसलिये प्रसिद्ध हो गया है कि, छहों दर्शनों में परस्पर विरोध है। मैं समझता था, श्री विज्ञान-भिक्षु ने

अपने सांख्यप्रवचन-भाष्य में विरोधपरिहार कर एकता स्थापित की होती, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया, उन्होंने वो विरोध स्वीकार किया है और इनको एक दूसरे ढंग से अविरोधी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। देखिये–

'स्यादेतत्। न्याय-वैशेषिकाभ्यामत्राऽविरोधो भवतु। ब्रह्ममीमांसा-योगाभ्यां तु विरोधोऽस्त्येव। ताभ्यां नित्येश्वरसाधनात्। अत्र चेश्वरस्य प्रतिषिद्ध्यमानत्वात्। न चात्राऽपि व्यावहारिक-पारमार्थिकभेदेन सेश्वरनिरीश्वरवादयोरविरोधोऽस्तु, सेश्वरवादस्योपासनापरत्वसम्भवादिति वाच्यम्। विनिगमकाभावात्। ईश्वरो हि दुर्ज्ञेय इति निरीश्वरत्वमपि लोकव्यवहारसिद्धमैश्वर्यवैराग्यायानुवदितुं शक्यते, आत्मनः सगुणत्वमिव। न तु क्वापि श्रुत्यादावीश्वरः स्फुटं प्रतिषिध्यते; येन सेश्वरवादस्यैव व्यावहारिकत्वमवधार्येतेति॥ अत्रोच्यते॥ अत्रापि व्यावहारिक-पारमार्थिक-भावो भवति। असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् इत्यादि शास्त्रैर्निरीश्वरवादस्य निन्दितत्वात्। अस्मिन्नेव शास्त्रे व्यावहारिकस्यैवेश्वरप्रतिषेधस्यैश्वर्यवैराग्याद्यर्थमनुवादस्यौचित्यात्। यदि हि लोकायतिकमतानुसारेण नित्यैश्वर्यं न प्रतिषिध्येत तदा परिपूर्णनित्यनिर्दोषैश्वर्यदर्शनेन तत्र चित्तावेशतो विवेकाभ्यासप्रतिबन्धः स्यादिति सांख्याचार्याणामाशयः। सेश्वरवादस्य न क्वापि निन्दादिकमस्ति। येनोपासनादिपरतया तच्छास्त्रं संकोच्येत। यत्तु—

नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम्।
अत्र वः संशयो मा भूज्ज्ञानं सांख्यं परं मतम्॥

इत्यादि वाक्यं, तद् विवेकांश एव सांख्यदर्शनस्य दर्शनान्तरेभ्य उत्कर्षं प्रतिपादयति, न त्वीश्वरप्रतिषेधांशेऽपि। ... ... तथा—

न्यायतन्त्राण्यनेकानि तैस्तैरुक्तानि वादिभिः।
हेत्वागमसदाचारैर्यद्युक्तं तदुपास्यताम्॥

इति मोक्षधर्मवाक्यादपि पराशराद्यखिलशिष्टव्यवहारेण ब्रह्ममीमांसान्यायवैशेषिकाद्युक्त ईश्वरसाधकन्याय एव ग्राह्यो बलवत्त्वात्। तथा,

यं न पश्यन्ति योगीन्द्राः सांख्या अपि महेश्वरम्।
अनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं व्रज॥

इत्यादिकौर्मादिवाक्यैः सांख्यानामीश्वराज्ञानस्यैव नारायणादिना प्रोक्तत्वाच्च। किञ्च ब्रह्ममीमांसाया ईश्वर एव मुख्यो विषय उपक्रमादिभिरवधृतः। तत्रांशे तस्य बाधे शास्त्रस्यैवाप्रामाण्यं स्याद्, यत्परः शब्दः स शब्दार्थ इति न्यायात्। सांख्यशास्त्रस्य तु पुरुषार्थतत्साधनप्रकृतिपुरुषविवेकावेव मुख्यो विषय इतीश्वर प्रतिषेधांशबाधेऽपि नाप्रामाण्यम्। यत्परः शब्दः स शब्दार्थ इति न्यायात्। अतः सावकाशतया सांख्यमेवेश्वरप्रतिषेधांशे दुर्बलमिति। ... ... तस्माद् अभ्युपगमवादप्रौढिवादादिनैव सांख्यस्य व्यावहारिकेश्वरप्रतिषेधपरतया ब्रह्ममीमांसायोगाभ्यां सह न विरोधः॥ [विज्ञानभिक्षुकृतसांख्यप्रवचनभाष्य की भूमिका]

पाठक इस सारे सन्दर्भ पर विचार करें और देखें श्रीविज्ञानभिक्षु दर्शनों का विरोध दूर करने में सफल हुए हैं या नहीं। उनकी सब से प्रबल युक्ति 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः' इस न्याय-द्वारा किसी भी ग्रन्थ के मुख्य विषय की ओर देखने की है। वे कहते हैं सांख्य में ईश्वर का प्रतिषेध रहे, पर यह उसका मुख्य विषय नहीं है। जब सांख्य का मुख्य विषय कुछ और है, तब ईश्वरके मुख्यतया प्रतिपादक वेदान्त और योग से उसका विरोध कैसा? यह एक युक्ति है, पर है कामचलाऊ। विज्ञानभिक्षु के विचारने का आधार पुराण हैं और पुराणों में शास्त्रों का विरोध दर्शा कर भी मिलाने का प्रयत्न किया गया है, अतः ये भी उसी ढंग पर सोचते हैं। सांख्य ईश्वरविरोधी है, सुतरां सिद्ध हुआ। दर्शनों का विरोधपरिहार विकट कार्य है, पर मैं अपने ढंग से इस विरोध पर विचार करना चाहता हूँ।

ब्राह्मण–ग्रन्थ।

ब्राह्मण मंत्रों के व्याख्यान हैं और सारा संस्कृतवाङ्मय से व्याप्त है। श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, षड्दर्शन, निरुक्तादि सब ग्रन्थ ब्राह्मणोंके आधार पर बने हैं, अतः संस्कृत में उपलब्ध किसी विषय के ग्रन्थ को समझने के लिये ब्राह्मणों का यथार्थ अर्थ जानना आवश्यक है। ब्राह्मण-ग्रन्थों के अप्रचार और अज्ञान से ही

नाना सम्प्रदाय और विरुद्ध वाद फैले हुए हैं। भिन्न भिन्न आचार्यों ने उपनिषद् जो ब्राह्मणों के अंश हैं, अपनी बुद्धि से समझने का प्रयत्न किया और जो कुछ समझ में आया, उसके अनुसार तर्क और प्रमाण एकत्र कर उन्होंने अपने मन्तव्यों की पुष्टि की। मैं ने ऊपर कहा है, ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद के व्याख्यान हैं। इसलिये ऋषियों के वेद-व्याख्यान की शैली पर भी हमें ध्यान देना होगा। वेदस्वाध्यायी जानते हैं, यद्यपि मंत्रों के कई प्रकार के व्याख्यान होते हैं और शतपथ में वे स्थान-स्थान पर प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होते हैं, पर दो सर्वाधिक मुख्य हैं (१) अधिदैवत और (२) अध्यात्म। एक ही शब्द अधिदैवत पक्ष में एक अर्थ रखता है, तो अध्यात्म में दूसरा। जब मुख्य शब्द का अर्थ परिवर्तित होता है, तब विशेषण भी उसी के अनुकूल अर्थ देने लग जाते हैं। विद्वान् लोग निरुक्त और ब्राह्मण-ग्रन्थों को पढ़ कर इसे देख सकते हैं। तथापि निरुक्त के एक उदाहरण से यहाँ उसे दिखा देना उचित समझता हूँ।

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्। श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥ (ऋ० ९।९६।६)

ब्रह्मा देवानामित्येष हि ब्रह्मा भवति देवानां देवनकर्मणामादित्यरश्मीनां, पदवीः कवीनामित्येष हि पदं वेत्ति कवीनां कवीयमानामादित्यरश्मीनां, ऋषिर्विप्राणामित्येष हि ऋषणो भवति विप्राणां व्यापनकर्मणामादित्यरश्मीनां ...... सोमः पवित्रमत्येति रेभन् इत्येष हि पवित्रं रश्मीनामत्येति स्तूयमानः। एष एवैतत् सर्वमक्षरमित्यधिदैवतम्।

अथाध्यात्मम्— ब्रह्मा देवानामित्ययमपि ब्रह्मा भवति देवानां देवनकर्मणामिन्द्रियाणां, पदवीः कवीनामित्ययमपि पदं वेत्ति कवीनां कवीयमानामिन्द्रियाणां.. सोमः पवित्रमत्येति रेभन्नित्ययमपि पवित्रमिन्द्रियाण्यत्येति स्तूयमानः। अयमेवैतत् सर्वमनुभवतीत्यात्मगतिमाचष्टे॥ १३॥

(निरुक्त अ० १४)

अध्यात्म का अर्थ।

अध्यात्म शब्द के दो खण्ड हैं, अधि और आत्मा। आत्म-विषयक वर्णनको अध्यात्म कहते हैं। वेदमें आत्मा, ब्रह्म आदि के अर्थ परमेश्वर हैं, पर ब्राह्मणोंमें यह बात नहीं है। ब्राह्मणों का आत्मा हमारा शरीरस्थ आत्मा ही है। इसके ब्रह्म आदि नाम और विभु आदि विशेषण देख कर घबराने की आवश्यकता नहीं है। ये नाम और विशेषण भिन्न भिन्न स्थानों में अपना अर्थ पकड़ते रहते हैं। अध्यात्म का सीधा-सादा अर्थ है शरीर और आत्मा-सम्बन्धी ज्ञान। शरीरसम्बन्धी ज्ञान को खींच कर परमेश्वर और ब्रह्माण्ड पर लगानेसे ही दोष उत्पन्न होते हैं। यदि ब्रह्माण्ड और परमेश्वरपरक अर्थ करना है, तो शब्दों का अर्थ और विशेषण वैसा ही कीजिए। तब कोई हानि नहीं होगी। यहाँ समझ लीजिये, ब्राह्मणग्रन्थों का आत्मा और ब्रह्म अध्यात्मविषय में जीवात्मा ही है। इससे परमात्मा अर्थ निकालने की कोई आवश्यकता नहीं। आप हमारे सम्मुख अनेक प्रश्न उपस्थित करेंगे। पर मैं जिस स्थितिको लक्ष्यमें रख कर बोल रहा हूँ, उसे पूरा समझने का उद्योग करेंगे, तो वे प्रश्न स्वयं निवृत्त हो जावेंगे।

दर्शनों का मुख्य विषय।

१. अथातो धर्मजिज्ञासा॥ (पूर्वमीमांसा० १।१।१)

शा० भाष्य०- तस्माद्धर्मो जिज्ञासितव्यः। स हि निःश्रेयसेन पुरुषं संयुनक्तीति प्रतिजानीमहे।

२. चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः॥ (मीमांसा. १।१।२)

शा० भा०- तया यो लक्ष्यते, सोऽर्थः (धर्मः) पुरुषं निःश्रेयसेन संयुनक्तीति प्रतिजानीमहे।

३. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। (वेदान्तदर्श. १।१।१)

४. अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः। (वैशे. १।१।१)

५. धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्। (वैशे. १।१।४)

६. प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्ताऽवयव-तर्क-निर्णयवाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास छल-जाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाऽधिगमः। (न्याय. १।१।१)

७. अथ त्रिविधदुःखाऽत्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः। (सांख्य. १।१)

८. अथ योगानुशासनम्। (योग. १।१)

९. हेयं दुःखमनागतम्। (योग. २)

इन छहों दर्शनों के इन वाक्यों पर ध्यान दीजिये।

१ मीमांसाशास्त्र धर्म की जिज्ञासा करता है, शबर-स्वामी इस धर्म का फल निःश्रेयसप्राप्ति कहते हैं।

२. वेदान्तदर्शन ब्रह्मकी जिज्ञासा करता है, इसका फल प्रत्यक्ष ही मोक्ष है।

३. वैशेषिकदर्शन धर्म की व्याख्या करता है और उस धर्म से उत्पन्न तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस प्राप्त होगा।

४. न्यायदर्शन भी प्रमाण-प्रमेयादि के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस की ओर ही संकेत करता है।

५. सांख्य तीन प्रकार के दुःखों से मुक्त करके अत्यन्त पुरुषार्थ- निःश्रेयस (मोक्ष) की ओर ले जाता है।

६. योगदर्शन योगद्वारा दुःख से मुक्त कर निःश्रेयस ही प्राप्त कराना चाहता है।

इन वाक्यों से पता चला कि, सारे दर्शन हमें दुःख से छुड़ाना और कल्याण जिसे निःश्रेयस कहते हैं, प्राप्त कराना चाहते हैं। इस प्रकार सब का अभिप्राय या उद्देश्य अथवा मुख्य विषय एक ही सुख-प्राप्ति है।

कोई दर्शन वेद-विरोधी नहीं।

१. औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तत् प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्। (मीमांसा. १।१।५)

शा० भा०- धर्मे वेदप्रामाण्याधिकरणम् ॥५॥

२. शास्त्रयोनित्वात्। (वेदान्त. १।१।३)

३. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।

(वैशेषिक. १।१।३)

४. श्रुतिप्रामाण्याच्च। (न्याय. ३।१।२९)

५. श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात्।

(सांख्यदर्श. १।१४७)

६. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि। (योगदर्श. १)

छहों दर्शन शब्द-प्रमाण को एक मतसे स्वीकार करते हैं। उन का शब्द-प्रमाण श्रुति और स्मृति हैं। उन में भी श्रुति मुख्य है। हम कह सकते हैं, छहों में से कोई भी वेदका विरोधी नहीं है। 'नास्तिको वेद-निन्दकः' (मनु० २।११) अर्थात् वेद-निन्दक नास्तिक है, इस परिभाषा में न आने से षड्दर्शन आस्तिक दर्शन हैं, यह निःसंकोच कहा जा सकता है। जिस मीमांसा को नास्तिक कहते हैं, वह तो वेद के बिना एक पग भी नहीं चल सकता। उसके लिये मुख्य प्रमाण वेद है। लोग सांख्य को नास्तिक समझते हैं, पर वह भी हाथ उठा कर ऊँचे स्वर में पुकारता है-

श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ॥

(सा० द० १।१४७)

अर्थात् यदि किसी अज्ञ मनुष्य को वेद की कोई बात प्रत्यक्ष प्रमाण से ध्यान में नहीं आती, तो वह झूठी नहीं है। वेद के वाक्य तो प्रत्यक्ष से विरोध होनेपर भी सत्य हैं। यदि प्रमाणज्ञ श्रुति की कोई बात असत्य कह दें, तो वह मानी जा सकती है, पर किसी विद्वान् ने अब तक श्रुति-सिद्ध अर्थ को असत्य या प्रत्यक्ष विरुद्ध नहीं कहा। पाठक देखें, जो सांख्य इतना बड़ा श्रुतिभक्त है, वह कोई बात श्रुति-विरुद्ध कैसे कहेगा? वह क्यों कहेगा, प्रत्यक्ष से ईश्वर की सिद्धि नहीं होती, जब प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान कैसे होगा? इत्यादि। सारे दर्शन वेदभक्त हैं, अतः उनकी किसी बात में भी विरोध नहीं है। देखिये महर्षि दयानन्द इस समस्या को कैसे सुलझाते हैं।

"(प्रश्न) जैसा सत्यासत्य और दूसरे ग्रन्थों का परस्पर विरोध है, वैसे अन्य शास्त्रोंमें भी है, जैसा सृष्टि-विषय में छः शास्त्रों का विरोध है- मीमांसा कर्म, वैशेषिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य प्रकृति और वेदान्त ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है। क्या यह विरोध नहीं है?

(उत्तर) प्रथम तो बिना सांख्य और वेदान्त के दूसरे चार शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी और इनमें विरोध नहीं, क्योंकि तुम को विरोधाविरोध का ज्ञान नहीं। मैं तुम से पूछता हूँ कि, विरोध किस स्थल में होता है? क्या एक विषयमें अथवा भिन्न भिन्न विषयोंमें?

(प्रश्न) एक विषय में अनेकों का परस्पर विरुद्ध कथन हो, उसको विरोध कहते हैं। यहाँ भी सृष्टि एक ही विषय है।

(उत्तर) क्या विद्या एक है या दो? एक है, जो एक है तो व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष् आदि का भिन्न भिन्न विषय क्यों है? जैसा एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एक दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है, वैसे ही सृष्टि-विद्या के भिन्न भिन्न छः अवयवों का शास्त्रोंमें

प्रतिपादन करने से इन में कुछ भी विरोध नहीं।" (सत्यार्थप्रका० समु० ३) षड्दर्शनोंके विरोध का इससे अच्छा-परिहार नहीं हो सकता। वादी कह सकता है देखिये। शब्द एक विषय है। इस एक ही विषय में नैयायिकों का पक्ष शब्द के अनित्यत्व में है। मीमांसक शब्द को नित्य मानते हैं। यह ठीक है। दोनों दो प्रकार की बात कहते हैं, पर यह ऐसे ही नहीं है, जैसा कि आत्मा को अजन्मा मान कर भी जन्म लेनेवाला कहते हैं। आत्मा स्वरूपसे अजर, अमर है। न वह बिगडता है, न बनता है, अतः अजन्मा है। शरीर के साथ संयोग को जन्म मानें, तो कौन कह सकता है, आत्मा का जन्म नहीं होता? शब्द आकाश का गुण है और आकाश नित्य है, इसे मीमांसक और नैयायिक दोनों स्वीकार करते हैं। नित्य का गुण-धर्म नित्य होने से शब्द नित्य है, यह दोनों स्वीकार करते हैं। देखिये वैशेषिक क्या कहता है-

कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दःस्पर्शवतामगुणः॥
(वैशे० २।१।२५)

कार्यान्तर के अप्रादुर्भाव से शब्द स्पर्शवाले पृथिव्यादि चार भूतों का गुण नहीं है। अतः यह आकाश का गुण हुआ। जो लोग संयोग या वियोग से शब्द की उत्पत्ति बतला कर शब्द को अनित्य बताते हैं, वे बतावें, कणादने स्पर्शवान् पदार्थों से शब्द की अनुत्पत्ति बता कर संयोग-वियोग का खण्डन कर दिया या नहीं। शब्द आकाश का गुण है, वह नित्य शब्द संयोग-वियोग-जन्य नहीं। संयोग-वियोग-जन्य शब्द कार्यशब्द है। वैशेषिककार यही बात कहते हैं—

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वाद्-
नित्याश्च। (वैशे० ७।१।२)
एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम्। (वैशे० ७।१।३)

द्रव्य के अनित्य होने पर पृथिवी आदि द्रव्य और रूप-रसादि गुण अनित्य होते हैं। नित्य द्रव्यों के गुण भी नित्य होते हैं।

आकाश के भी नित्य और अनित्य भेद होने से शब्द भी नित्य और अनित्य है। इस प्रकार नैयायिक नित्य शब्द को मानते हुए भी कार्यशब्द की नित्यता का खण्डन करते हैं, तो वह मीमांसा से कोई विरोध नहीं है।

मीमांसा को वेदकी नित्यता सिद्ध करनी है, इसे नित्य शब्द की आवश्यकता है। न्याय को परमाणु और कार्यों की व्याख्या करनी है। इसने कार्यशब्द को लिया है। दोनों शब्द की दो विशेष अवस्थाओं का वर्णन करते हैं और ठीक वर्णन करते हैं, अतः यह विरोध नहीं है। विरोध पक्ष में एक पक्ष सत्य और दूसरा असत्य होता है। हमें दर्शनों के समझने के लिये महाभाष्य की विचारशैली अपनानी चाहिये। अर्थात् दोनों पक्षों की युक्तियाँ सुन कर यदि दोनों युक्तियाँ ठीक हैं, तो अवस्थाभेद से दोनों बातें ठीक हैं, ऐसा मानना चाहिये।

प्रमाण की सत्ता

सभी दर्शन स्वीकार करते हैं। यद्यपि कोई एक प्रमाण, कोई दो, कोई तीन और कोई चार मानता है, पर सारे दर्शन सब प्रमाणों का प्रयोग करते हैं। जिस दर्शन को जितने प्रमाणों की आवश्यकता है, उसने उतने लिये हैं। प्रमाण की सत्ता सभी स्वीकार करते हैं और सब सभी प्रमाणों का प्रयोग करते हैं, अतः तत्वतः प्रमाण-विषयमें भी किसी का कोई मतभेद नहीं है।

आत्मा की सत्ता।

सभी मानते हैं। यद्यपि दर्शनोंकी वर्णनशैली भिन्न भिन्न होनेसे प्रमेय भी पृथक् पृथक् हैं, तथापि आत्मा की सत्ता सभी मानते हैं। आत्मा को सभी नित्य स्वीकार करते हैं। निःश्रेयस इस आत्माको ही प्राप्त कराना है, अतः आत्मा को नित्य माने विना किसी का काम नहीं चलता। मीमांसक याग को धर्म मानते हैं, यह धर्म अपूर्वद्वारा स्वर्ग प्राप्त कराता है। मीमांसादर्शन चोदना से धर्म का ज्ञान होना मानता है, अतः उसे आवश्यक है कि, वेद (ब्राह्मण) के वाक्यों पर विचार करे। आत्मा किन किन कर्मों का सम्यक् अनुष्ठान कर अपना जीवन सुखी बना सकता है, यज्ञों का यही प्रयोजन है। यह कार्य मीमांसा ने पूर्ण किया है। हमारे लिये आत्मा और शरीर का ज्ञान प्राप्त करना और इनके सम्बन्धोंका निर्णय भी आवश्यक है। शेष पाँच दर्शन इस कार्य को पूर्ण करते हैं। सब एक मत से शरीर को नश्वर और आत्मा को अविनाशी बताते हुए शरीर से पृथक् होनेका उपदेश करते हैं। आत्मा योगद्वारा शरीरके अपना

पृथक्त्व ज्ञान करें, तो संसार के क्लेश, कष्ट से बच सकता है। सब दर्शनों की यही सम्मति है। शरीर प्रकृतिसे बना है, प्रकृति परमाणुरूप है, अर्थात् उसमें पृथिव्यादि के परमाणु हैं, उन्हीं परमाणुओंका एक नाम प्रकृति है। यह प्रकृति नाम भी विकृति के कारण है। प्रकृति का अर्थ मूल और विकृति का अर्थ कार्य है।

प्रकृति और विकृति का वही सम्बन्ध है, जो पट और तन्तुका, मिट्टी और घडेका। तन्तु प्रकृति है, पट विकृति। मृत्तिका प्रकृति है, घडा विकृति। पटके परमाणु तन्तु कहे जा सकते हैं और घट के परमाणु रजःकण। आत्मा प्रकृतिके साथ बँधा है, अतः प्रकृतिका तत्वतः ज्ञान कराना दर्शनों का आवश्यक कार्य है। अब आप ब्राह्मणों और दर्शनों का सम्बन्ध समझ सकते हैं। ब्राह्मण के दो भाग हैं कर्मकाण्ड और ज्ञान-काण्ड। कर्मकाण्ड का विवेचन मीमांसा में और ज्ञानकाण्ड का विवेचन शेष पाँच दर्शनों में किया गया है। अब आप अनुमान कर सकते हैं, ब्राह्मणों के समझने के लिए दर्शनों के उत्तम ज्ञान की और दर्शनों के ज्ञान के लिये ब्राह्मणों को सम्यक् समझने की कितनी आवश्यकता है। ब्राह्मणों के समझने के लिए वेदके यथार्थ अध्ययन की आवश्यकता ऊपर दिखा आये हैं। अतः सिद्ध हुआ, बिना

वेद और ब्राह्मण।

पढे दर्शनों का ज्ञान अशक्य है। वेद और ब्राह्मण में दृष्टि-भेद होने पर दर्शनों के अर्थों पर भी मत-भेद हो सकता है। यही नहीं दर्शनों के सम्यक् ज्ञान के लिये योगाभ्यास और पदार्थ-ज्ञान की भी आवश्यकता है। जिसकी बुद्धि योगाभ्याससे जितनी ही सूक्ष्म होगी, वहाँ वह उतना ही अध्यात्मचर्चा में अधिक शुद्ध प्रवेश पा सकेगा। जो पदार्थों का जितना अधिक सूक्ष्म और शुद्ध विवेचन करता होगा, वह उतना ही शीघ्र दर्शनों के सूक्ष्म वर्णनों को शुद्ध रूप में समझ सकेगा। योग और पदार्थ-ज्ञान की विपरीतता से शास्त्र का अर्थ या तो समझ में नहीं आता या विपरीत दीखने लगता है। अतः दर्शन-प्रविविक्षुओं को उपर्युक्त निर्देशों पर ध्यान रखना चाहिये।

इति।

वैदिक स्वप्नविज्ञान।

(लेखक- श्री॰ पं॰ भगवद्दत्त वेदालंकार, गुरुकुल कांगड़ी)

(२)

अब हम वेदमन्त्रों के आधार पर इस स्वप्न के ऊपर विचार करते हैं। वेदों में स्वप्न के प्रत्येक रूप व उसकी समस्याओं पर विस्तृत विवेचन तो नहीं मिलता, परन्तु उसके बुरे रूप का बहुत विस्तार से वर्णन मिलता है। और उसके विनाशके लिये भी अनेकों उपायोंको विस्तारसे दर्शाया गया है। और फिर स्वप्नके बुरे रूप को दर्शाते हुए कहीं कहीं अच्छे स्वप्नकी ओर भी संकेत कर दिया गया है।

भद्र और अभद्र की दृष्टि से स्वप्न के दो विभाग।

वेदों में अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के स्वप्नों का स्पष्ट रूप से निर्देश मिलता है। उदाहरण के तौरपर दो एक प्रमाण हम यहां दिये देते हैं। अथर्व॰ १६ कां॰ ५ म सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के अन्त में यह आता है कि—

" तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म
स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि "

" हे स्वप्न! हम तेरे उस भद्र रूपको भी भांति भली जानते हैं, वह तेरा भद्र रूप हमारी दुष्वप्न्यसे रक्षा करे। "

इस मन्त्र में स्वप्न को बुरे अर्थ में भी प्रयुक्त किया गया है और अच्छे अर्थ में भी। स्वप्न को ग्राही, अभूति, आदि का पुत्र, अन्तक व मृत्यु आदि कहने से स्वप्न का बुरा रूप तो स्पष्ट है ही। परन्तु दुष्वप्न्य से रक्षा करने में उसके भद्र रूप का भी संकेत मिल रहा है। यदि उपर्युक्त मन्त्रभागमें स्वप्न के भद्र रूपका वर्णन न मानें, तो दुष्वप्न्यसे रक्षा करनेकी उससे प्रार्थना कैसे की जा सकती है? दुष्वप्न्य से रक्षा तो स्वप्न का भद्र रूप ही कर सकता है। स्वप्नके भद्र रूपका संकेत ' तं त्वा तथा सं विद्म ' से मिल रहा है।

अथर्व॰ १९।५६।३ में तो स्वप्न के भद्र रूप का वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है। वहां आता है—

' बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत
महिमानमिच्छन् '

अर्थात् " महान् गतिवाला यह स्वप्न अपनी महिमाको चाहता हुआ असुरोंको छोड़कर देवोंको प्राप्त हुआ। "

जिन स्वप्नों के मूल में आसुरी भाव होते हैं, वे अभद्र स्वप्न होते हैं और जिन के मूल में देव अर्थात् दिव्य भाव होते हैं, वे भद्र स्वप्न कहलाते हैं। उदाहरणके रूप में महात्मा मुन्शीराम [स्वा॰ श्रद्धानन्द] का गुरुकुल का स्वप्न दिखाया जा सकता है। इस स्वप्न के मूलमें दिव्य भाव काम कर रहे हैं। और इस मन्त्र में ' बृहद्गावा ' तथा ' महिमानमिच्छन् ' ये दो विशेषण भी स्वप्न के भद्र रूप को बता रहे हैं। ' बृहद्गावा ' महान् गतिवाला होना- अच्छे स्वप्न में ही सम्भव है। महान् तथा निरन्तर गति दिव्य स्वप्न लेनेवाला ही करता है। आसुरी भावोंमें गति का महान् होना असम्भव है। आगे ' महिमानमिच्छन् ' का भाव यह है कि, दिव्य स्वप्न अपनी महिमा को चाहता है। ऐसे दिव्य स्वप्न लेनेवाले मनुष्य का चारों ओर यश फैलता है। आसुरी स्वप्नों में महिमा का होना- तथा यश का फैलना- नहीं हो सकता। इसी भाव को इसी सूक्त के षष्ठ मन्त्र में इस प्रकार बताया गया है।

'यशस्विनो नो यशसेह पाहि' अर्थात् हम यशस्वी हैं। हे स्वप्न ! तू यश के द्वारा हमारी रक्षा कर।

भद्र स्वप्न ही मनुष्य का चारों ओर यश फैलाता है।

इस भद्र स्वप्न के सम्बन्ध में अ॰ १९।५७।३ में कहा गया है कि—

' यो भद्रः स्वप्न सः मम
यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः। '

अर्थात् हे स्वप्न ! जो तेरा भद्र रूप है, वह मेरा और जो पापरूप है, वह शत्रु के लिये भेजते हैं।

इस प्रकार वेद में अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के स्वप्नों का स्पष्ट निर्देश मिलता है।

हमें यहां एक बात का और ध्यान रखना चाहिये कि अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के स्वप्नों का एक सामान्य नाम

इन स्थलों पर ' स्वप्न ' ही आया है। इसलिये स्वप्न शब्द का कहां बुरा अर्थ लेना और कहां अच्छा अर्थ लेना– यह प्रकरण बल से निर्णय किया जा सकता है। इसी प्रकार स्वप्न का कहां मुख्यार्थ निद्रा व आलस्य लेना और कहां मानसिक क्रिया लेना– यह भी प्रकरण से निश्चय किया जा सकता है।

काल की दृष्टि से स्वप्न के दो विभाग।

वेदों में काल की दृष्टि से स्वप्न को दो भागों में विभक्त किया गया है। एक दिवा स्वप्न (Day-dream), दूसरा रात्रिस्वप्न (Dream)। आधुनिक विद्वान् भी काल की दृष्टि से स्वप्न के ये ही दो विभाग करते हैं। अब हम मन्त्र दिखाते हैं। अथर्व० १६।७।१० में दुष्ट स्वप्नका वर्णन करते हुए लिखा है कि " **यज्जाग्रद्यत्सुप्तो यद्दिवा यन्नक्तम्** " अर्थात् जो दुष्ट स्वप्न जागते हुए, जो सोते हुए, जो दिन में और जो रात्रि में आते हैं। इस मन्त्र में रात्रि व दिन– यह काल की दृष्टि से भी स्वप्न के दो विभाग दिखा दिये हैं, और मनुष्य की जाग्रदवस्था और स्वप्नावस्था इन दो अवस्थाओं की दृष्टि से भी स्वप्न के दो विभाग दिखा दिये हैं। कोई यह पूछ सकता है कि, उपर्युक्त दोनों कालों या दोनों अवस्थाओं के किस क्षण में मनुष्य को स्वप्न आते हैं ?

इसका उत्तर वेद ही इस प्रकार दे रहा है। अथर्व० १६।७। ९ में कहा है कि, " **यदद्यो अह्नो अभ्यगच्छन्** " अर्थात् जो दुःस्वप्न्य अमुक अमुक समय में आया हो– इससे यह पता चलता है कि, बुरे स्वप्नों के लिये समय का प्रतिबन्ध बिल्कुल नहीं है। वह किसी भी समय आ सकता है। ' **यद्दोषा यत्पूर्वां रात्रिम्** ' इस प्रकार जो निश्चित समय का संकेत मिल रहा है, वह बुरे स्वप्नों के समय के निर्धारण के लिये नहीं है, अर्थात् बुरे स्वप्न अमुक अमुक समय में ही आ सकते हैं, इनके अतिरिक्त समयों में नहीं आ सकते, ऐसा वेद का आशय नहीं है। इसी भाव को पुष्ट करने के लिये इसी सूक्त के ११ वें मन्त्र में कहा कि– '**यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये**' अर्थात् रात्रि व दिन के जिस जिस हिस्से में मैं इस स्वप्न को पाऊँ, उससे इस स्वप्न को निकाल बाहिर करूँ। अहन् शब्द का प्रयोग रात्रि, दिन व सामान्य काल के लिये भी वैदिक साहित्य में पाया जाता है। इसलिये अहन् शब्द को यहाँ सामान्य काल का वाचक मानकर यह अर्थ कर सकते हैं कि जिस समय अथवा जिस क्षण भी बुरे स्वप्न आवें, उसी क्षण उनको हम बाहिर निकाल सकें, ऐसी हमारे अन्दर सामर्थ्य होनी चाहिये।

इस प्रकार वेद स्वप्न के लिये काल का कोई प्रतिबन्ध नहीं बताता। परन्तु एक बातका हमें अवश्य ख्याल रखना चाहिये कि काल की दृष्टिसे स्वप्न के ये दो स्थूल विभाग होते हुए भी इनका पृथक् पृथक् वर्णन या दुःस्वप्नों के विनाश का पृथक् पृथक् उपाय वेदों में नहीं है। दूसरे मन्त्रोंसे यह झलकता है कि, रात्रि-स्वप्नकी अपेक्षा दिवा-स्वप्न का महत्व वेदों में ज्यादह है। क्योंकि रात्रि स्वप्न प्रायः दिवास्वप्नका ही प्रतिबिम्ब होता है। पूर्ण प्रतिबिम्ब न हो, तो भी आधार व तत्व एक ही होता है।

अथर्व० १६।५ सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के अन्त में स्वप्नके लिये कहा गया है कि, ' **यमस्य करणोऽसि अन्तकोऽसि, मृत्युरसि** ' अर्थात् हे स्वप्न! तू यम का साधक है, अन्तक है और मृत्यु है। यदि स्थूल दृष्टि से देखें, तो तीनों का एक ही भाव प्रतीत होता है। परन्तु हमारी सम्मति में ये तीनों पृथक् पृथक् भावों के द्योतक हैं। अब हम क्रमशः इन विशेषणों पर विचार करते हैं।

यमस्य करणः—

' यमस्य करणः ' का अर्थ है, यम का साधक। करण शब्द साधकतम अर्थ में आता है। अर्थात् जो यम का सब से बड़ा साधक है। यम के भी दो मुख्य अर्थ हैं, एक नियन्त्रण दूसरा मृत्यु।

इस प्रकार ' यमस्य करणः ' का अर्थ हुआ कि, स्वप्न नियन्त्रण का करनेवाला और मृत्यु का करनेवाला है। यह नियन्त्रण और मृत्यु अच्छे व बुरे दोनों अर्थों में लग सकता है। बुरे स्वप्न का कोई शिकार हुआ हुआ है, तो वह उस के नियन्त्रण में रहता ही है। और वह बुरा स्वप्न उस की सब शक्तियों का हनन कर देता है।

दूसरी तरफ भद्र स्वप्न लेनेवाले मनुष्यको भी उसके नियंत्रण में रहना पड़ता है, और वह भद्र स्वप्न इस मनुष्य की सब बुराइयों का विनाश कर देता है। इस प्रकार अभद्र व भद्र दोनों प्रकार के स्वप्नों में नियंत्रण

व मृत्यु करने का सामर्थ्य है।

अन्तकः—

स्वप्न का अगला विशेषण 'अन्तकः' है। अर्थात् एक मनुष्य अभीतक अच्छा है, परन्तु बुरे स्वप्न का उस में प्रवेश हुआ कि नहीं– इस में से उन सब भलाइयों का अन्त हो जाता है। इसी प्रकार बुरे मनुष्य में किसी प्रकार भद्र स्वप्नों का प्रवेश होने लगे, तो वे शनैः शनैः मनुष्य में से बुराइयों का अन्त कर देते हैं। अथवा तनिक दिन के सामान्य स्वप्नों में भी इस विशेषण का भाव यह है कि, स्वप्न अपने से पूर्व की मनुष्य की अवस्था का अन्त कर देता है।

मृत्यु—

तीसरा विशेषण मृत्यु है। अर्थात् बुरा स्वप्न अच्छाइयों को मारता है और अच्छा स्वप्न बुराइयोंको मारता है।

इन तीनों का समन्वय हम इस प्रकार कर सकते हैं– बुरा स्वप्न जब मनुष्य पर आक्रमण करता है, तब वह उस मनुष्य को अपने नियन्त्रण में ले लेता है। अगला उस का कार्य यह होता है कि, वह अच्छाइयों अथवा मनुष्य की तात्कालिक अवस्था को वहीं रोक (Stop) देता है। यदि उस के रोकने पर भी कुछ अच्छाइयां बची रहीं, तो फिर वह उन को मारता है। इसी प्रकार भद्र स्वप्न के सम्बन्ध में भी समझा जा सकता है।

दूसरी बात जो कि, इस सूक्त के सम्बन्ध में विशेष रूप से कहनी है, वह यह कि, इस सूक्त में स्वप्न को ग्राही अभूति आदि का पुत्र बताया गया है। ये ग्राही, अभूति आदि बुरे स्वप्न को तो पैदा करती ही हैं, परन्तु इन से अच्छा स्वप्न भी पैदा हो सकता है। यह हम मन्त्रों के अर्थ स्पष्ट करते हुए दिखायेंगे।

तीसरी बात जो कि, इस सूक्त के सम्बन्ध में कहनी है, वह यह कि, इस सूक्त में भद्र स्वप्न से प्रार्थना की है कि, वह हमारी दुष्वप्न्य से रक्षा करे। भद्र स्वप्न बुरे स्वप्नों का किस प्रकार निराकरण कर सकता है, यह विचारणीय है। स्वप्न दुष्वप्न्य से रक्षा करे - यह प्रार्थना करने से यह तो पता चलता है कि, स्वप्नावस्था अक्षुण्ण रहनी है। केवल स्वप्न की सामग्री बदलने की आवश्यकता है। किसी मनुष्य का स्वभाव यह है कि, वह अपने मस्तिष्क का उपयोग बुरे बुरे षड्यन्त्र रचने व बुरी बुरी स्कीमों के बनाने में लेता है। उस के इस बुरे स्वभाव को बदलने का सरल उपाय यह नहीं है कि, उस को षड्यन्त्र रचने व स्कीमें आदि बनाने का अवसर ही न दें। सब से सरल उपाय यही है कि, हम उसे समस्याओं के सुलझाने तथा भद्र स्कीमों के बनाने के लिये प्रेरित करें। इस प्रकार जब वह भद्र स्कीमें बनाता रहेगा, तो स्वयं ही उसके अन्दर परिवर्तन हो जावेगा।

और फिर इस सूक्त में भद्र स्वप्न से यह प्रार्थना की है कि, वह हमारी दुष्वप्न्य से रक्षा करे। अब विचारणीय यह है कि, यह दुष्वप्न्य क्या चीज है? दुष्वप्न्य की व्युत्पत्ति इस प्रकार हो सकती है? 'दुःस्वप्ने भवम्' अर्थात् दुष्वप्नमें होनेवाले– इसके परिणाम आदि दुष्वप्न्य कहला सकते हैं। परन्तु दुष्वप्न के भी स्वप्न शब्द के आधार पर दो अर्थ हो सकते हैं। एक बुरी नींद और दूसरा बुरा स्वप्न। जहां दुष्वप्नका अर्थ बुरी नींद करेंगे, वहां नींद के कारण उत्पन्न बुरा स्वप्न ही लिया जा सकता है। परन्तु जहां दुष्वप्नका अर्थ बुरा स्वप्न करें, वहां दुष्वप्न्य का अर्थ बुरे स्वप्नों से होनेवाले रोग आदि दुष्परिणामों का ग्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार दुष्वप्न्य के दो अर्थ हो सकते हैं, एक बुरी नींद से उत्पन्न बुरे स्वप्न और दूसरे बुरे स्वप्नों के दुष्परिणाम।

इस प्रकार इस सूक्त में अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के स्वप्नों में विवेक करके बुरे स्वप्नों के स्थान पर अच्छे स्वप्न लेने का विधान किया है।

ग्राही का पुत्र —

अथर्व० १६।५।१ में स्वप्नको ग्राहीका पुत्र बताया गया है। मन्त्र इस प्रकार है—

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः
पुत्रोऽसि यमस्य करणः।

हे स्वप्न! हम [ते] तेरी [जनित्रम्] उत्पत्ति को [विद्म] जानते हैं। तू [ग्राह्याः पुत्रः असि] ग्राही का पुत्र है। और [यमस्य करणः] मनुष्य को तू अपने नियन्त्रण में ले लेनेवाला है।

इस उपर्युक्त मन्त्र में स्वप्न को ग्राही का पुत्र कहा गया

है। अब विचारणीय यह है कि, ग्राही किसे कहते हैं ?

शब्दकल्पद्रुम में ग्राही के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है—

गृह्णातीति, मलबन्धकः, धारकः इति वैद्यकम्।
प्रतिकूलो वा । ग्रहणकर्ता इति व्याकरणम्।

अर्थात् ग्राही के शब्दकल्पद्रुम के आधारपर तीन अर्थ हुए हैं—

१. ग्रहण करनेवाला

२. प्रतिकूल

३. मलबन्धक

वास्तव में सूक्ष्म दृष्टि से धात्वर्थ के आधारपर देखा जाय, तो ' ग्राही ' का एक ही अर्थ है और वह अर्थ है, ग्रहण करनेवाला। अन्य अर्थ, तो इसके विस्तारमात्र हैं। इसलिये धात्वर्थके आधारपर ग्रहण करने, पकडने वा जकडने का गुण जिस पदार्थ आदिमें हो, वह ग्राही कहला सकता है। इस प्रकरण में ग्राही से तात्पर्य उन से है, जो कि स्वप्न की उत्पत्ति के कारण हों।

इनको हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं।

१. मानसिक-ग्राही

२. शारीरिक-ग्राही

१. मानसिक ग्राही—

मानसिक ग्राही वे हैं, जो कि मनुष्य के मनको पकडते हैं। जब एक अपूर्ण इच्छा वा कोई विचार मनुष्य के मन को इस तरह से पकड ले कि वह मनुष्य किसी तरह से भी उस से अपना पिण्ड न छुडा सके, तो वह इच्छा वा विचार स्वप्न की उत्पत्ति का कारण बनते हैं। इसलिये मन को जकडनेवाले इच्छा व विचार आदि भी ग्राही कहला सकते हैं।

२. शारीरिक ग्राही—

दूसरे शारीरिक ग्राही हैं। वे भी कई प्रकार के हो सकते हैं। वैद्यक ग्रन्थों में मलबन्धकको ग्राही कहा गया है। वैद्य गठियारोग को भी ग्राही मानते हैं। पण्डित क्षेमकरणदासजीने अपने अथर्ववेद-भाष्य में स्वप्नका अर्थ आलस्य करके ग्राही का अर्थ ' सन्धीनां ग्रहणशील-पीडायाः ' शरीर को संधिस्थानों के जकडनेवाला अर्थात् गठियारोग किया है।

पं० क्षेमकरणदासजी का यह अर्थ कुछ समीचीन नहीं प्रतीत होता। क्योंकि यदि स्वप्न का अर्थ उनके कथनाऽनुसार आलस्य ही कर लें, तो भी आलस्य शरीर का गुण नहीं, मन का गुण है। मन यदि ग्राही का शिकार हुआ हुआ है, तो आलस्य का होना अवश्यं भावी है। परन्तु शारीरिक ग्राही अर्थात् कठिया रोगमें आलस्यका अवश्यं भावी होना निश्चित नहीं है। सम्भव है कि कोई उद्यमी सन्त महात्मा गठियारोग से पीडित हो, परन्तु आलस्य से नितान्त दूर हो, वह गठियारोग से पीडित होने के कारण शारीरिक उद्यम न कर सके, परन्तु मानसिक व बौद्धिक उद्यम अवश्य कर सकता है। अतः यहाँ पर हमें धात्वर्थ के आधार पर मानसिक ग्राही तथा शारीरिक ग्राही दोनों अर्थ अवश्य लेने चाहिये। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करें, तो अथर्ववेद के १६ वें काण्ड के द्वितीय अनुवाक का यह स्वप्न का प्रकरण आलस्य में घटाना ठीक नहीं।

क्योंकि इस सूक्त तथा अगले सूक्तों के स्वप्नसम्बन्धी वर्णन के आधार पर स्वप्नावस्था आलस्य की अवस्था से एक पृथक् ही अवस्था प्रतीत होती है। एक प्रकार से आलस्य परिश्रम तथा कार्य के अभाव की अवस्था है। परन्तु स्वप्नावस्था के लिये हम ऐसा नहीं कह सकते। वह एक भावात्मक अवस्था है। इस में शरीर तो कार्य नहीं कर रहा होता, परन्तु मनुष्य का मन बहुत कार्य कर रहा होता है। इसलिये यहाँ स्वप्न का अर्थ आलस्य करना और ग्राही का अर्थ गठियारोग करना उचित नहीं प्रतीत होता। यहाँपर स्वप्न शब्द आलस्य अर्थमें प्रयुक्त न होकर मानसिक अवस्था स्वप्नाऽवस्था के लिये प्रयुक्त हुआ है और वेदमें ग्राही शब्द शारीरिक ग्राहीके लिये ही नहीं अपितु मानसिक ग्राही के लिये भी प्रयुक्त हुआ है। ग्राही के ऊपर विस्तार से विचार तो फिर कभी किया जायेगा, उदाहरण के तौर पर हम यहाँ एक मन्त्र दिये देते हैं।

अथर्व० १२।२।१९ में एक मन्त्र आता है, जो इस प्रकार है-

ग्राह्या गृहाः संसृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो यः क्रव्यादं निरादधत्॥

अर्थात् " (यत्) जब (स्त्रियाः) स्त्रीका (पतिः) स्वामी (म्रियते) मर जाता है, तब (गृहाः) घरके अन्य सम्बन्धी बन्धुबान्धव आदियों को (ग्राह्याः) ग्राही (संसृज्यन्ते) आ लगती है। उस समय (ब्रह्मैव विद्वान् एषः) ब्रह्मवेत्ता मुमुक्षु विद्वान् ही प्रापणीय है, (यः) जो कि (क्रव्यादम्) मांस खानेवाली इस ग्राही को (निरादधत्) निराकरण कर दे। "

इस मन्त्र में ग्राही, मानसिक ग्राही, चिन्ताशोकादि के सिवाय शारीरिक व्याधि में नहीं घट सकती। यह बात निर्विवाद सिद्ध ही है कि, जब घर का कोई आदमी मर जाता है, तब घर के अन्य व्यक्ति चिन्ताशोकादि में डूब जाते हैं। चिन्ता, शोक आदिमें डूबे हुए मनुष्य शनैः शनैः क्षीण हो जाते हैं, इसलिये इन ग्राहियों को क्रव्याद कहा है और उस समय उनकी चिन्ता आदि ग्राहीको ब्रह्मवेत्ता विद्वान् ही दूर कर सकता है। इस मन्त्रमें ' ब्रह्मैव विद्वान्' इस बात को बताता है कि, मानसिक आधि चिन्ता आदि ग्राहियों को स्थूल शरीर का वैद्य ठीक नहीं कर सकता। अपि तु मोह-माया से ऊपर उठा हुआ, संसारविरक्त, ब्रह्मवेत्ता सन्त महात्मा ही दूर कर सकता है।

अतः इस उपर्युक्त मन्त्र से यह स्पष्ट है कि मानसिक ग्राही भी होती है। और स्वप्न के प्रकरण में मानसिक ग्राही ही अधिक महत्व रखती है।

दूसरी जो शारीरिक ग्राही है, जो कि मलबन्धरूप या मलबन्ध करनेवाली है, यह भी स्वप्नों को पैदा करनेवाली है। यह तो सब मनुष्यों का प्रत्यक्ष अनुभव है कि जिस दिन मनुष्यका पेट खराब हो, उस दिन रात्रिको स्वप्न बहुत अधिक आते हैं। दिन में भी जागते हुए मन बहुत खराब रहता है। मनुष्य के मन में नाना भांति के दुःसंकल्प तथा कुविचार पैदा होते रहते हैं।

इस प्रकार मानसिक ग्राही तथा शारीरिक ग्राही ये दोनों ग्राहियां दिवास्वप्न तथा रात्रिस्वप्न दोनों प्रकार के स्वप्नों को पैदा करनेवाली हैं।

स्वप्न को ग्राही का पुत्र कहने का एक और भी भाव है। जिस प्रकार " सहसः पुत्रः का भाव यह है कि वह बहुत साहसी है, उसी प्रकार स्वप्न को " ग्राहीका पुत्र " कहने का भाव यह है कि वह स्वयं ग्राही पैदा करनेवाला है। इसलिये जो मनुष्य रातदिन स्वप्न लेता रहता है, वह फिर स्वप्न के पास से अपना पिंड नहीं छुडा सकता।

अब हम इस मन्त्र में वर्णित स्वप्न के अच्छे रूप को दर्शाते हैं।

ग्राही से आक्रान्त मनुष्य कालान्तर में जब उस के दुष्परिणामों को देखता है, तो उसे दुःख होता है। उस समय वह उस ग्राही से छूटने का प्रयत्न करता है। उस ग्राही से जहां एक तरफ बुरे स्वप्न पैदा होते हैं, वहां दूसरी तरफ प्रायश्चित्त की अवस्था में भद्र स्वप्न पैदा होने लगते हैं। इस प्रकार ग्राही भद्र स्वप्नों की भी जननी है।

निर्ऋति का पुत्र—

आगे अथर्व० १६।५।१ में स्वप्न को निर्ऋति का पुत्र बताया गया है। मन्त्र इस प्रकार है।

" विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि० "

अर्थात् " हे स्वप्न ! हम तेरी उत्पत्ति को जानते हैं। तू निर्ऋति का पुत्र है। "

अब विचारणीय यह है कि, निर्ऋति किसे कहते हैं ? देवराज यज्वाने अपनी निरुक्त की टीका में निर्ऋति का निर्वचन इस प्रकार किया है—

निर्ऋतिर्निरमणात् (२,७) निरुक्तम्। अस्य स्कन्दस्वामी = निरमणात् = निश्चलत्वेनाऽवस्थानात् इत्यर्थः। ... ... वैयाकरणपक्षेण तु निरुपसृष्टादर्तेः क्तिनि निर्ऋतिः निःक्रान्ता ऋतेर्गमनात् निश्चलवद् वतिष्ठते इत्यर्थः।

अर्थात् " निर्ऋति शब्द निर् पूर्वक रम् धातु से अथवा निर् पूर्वक ऋ गतौ धातु से निष्पन्न किया जा सकता है। तथा व्याकरण के आधार पर निर्ऋति का अर्थ निश्चल होना, गतिरहित होना, यह हो सकता है। "

गतिशून्यता तथा निश्चलता की अवस्था तमोगुणी अवस्था की सूचक है और सामान्य मनुष्य की तो गतिशून्यता तथा निश्चलता की अवस्था तमोगुणी ही होती है। इस अवस्था में मनुष्य परिश्रम आदि न कर के आलसियों की तरह पड़ा रहता है। इस का परिणाम यह

होता है कि मनुष्य आत्मिक, मानसिक व शारीरिक आवश्यकताओं को भी पूरा न कर सकने के कारण नाना भांति के बुरे बुरे स्वप्न लिया करता है।

अब हम ब्राह्मणग्रन्थों के आधार पर भी निर्ऋति का स्वरूप व प्रभाव दिखाते हैं। जो कि निम्न प्रकार है—

पाप्मा वै निर्ऋतिः। (श० ७।२।१।१)
कृष्णा वै निर्ऋतिः। (श० ७।२।१।७)
घोरा वै निर्ऋतिः। (श० ७।२।१।११)

अर्थात् पाप्मा, कृष्णता, कलुषिता तथा घोर कर्म आदियों को निर्ऋति कहते हैं। जो मनुष्य पापयुक्त, मलिन तथा भयानक कर्म करता है, उसका मन बडा विक्षुब्ध रहता है। वह नाना भांति के दुस्संकल्पों का शिकार बना रहता है और रात्रि को भी उसे नाना भांति के भयावने स्वप्न दिखाई देते हैं। इसी प्रकार निर्ऋति के जो अन्य अर्थ हैं कष्ट, मृत्यु तथा समाज से पृथक् कर देना इत्यादि बातें भी निर्ऋति के ही अन्य रूप हैं। कष्ट आदि के होने पर भी मनुष्य को नाना भांति के स्वप्न आया करते हैं।

अब हम वेद के आधार पर भी निर्ऋति के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार करते हैं। मन्त्र में कहा है—

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे। (ऋ० १।११७।५)

अर्थात् "निर्ऋति की गोदमें बैठा हुआ मनुष्य सोते हुए के समान होता है।" यह मन्त्रभाग निर्ऋतिकी तामसिक अवस्था का कैसा सुन्दर निदर्शक है! अर्थात् जो मनुष्य निर्ऋति से आक्रान्त होता है, वह सोया हुआसा अर्थात् तामसिक अवस्था में होता है और अथर्व० ३।६।५ में कहा है कि—

सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः।

अर्थात् निर्ऋति इन्हें कभी न छूटनेवाले मृत्यु के पाशों में बांध ले। इस निर्ऋति के कारण मनुष्य की आत्मिक, मानसिक व शारीरिक तीनों प्रकार की मृत्यु हो सकती है। इसलिये ऋ० १।२४।९ में इस प्रकार कहा कि-

बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः।

अर्थात् प्रकृष्ट गतियों से निर्ऋति को दूर कर दो। यहाँ 'पराचैः' शब्द विशेष ध्यान देनेयोग्य है। यह शब्द परा उपसर्ग अञ्चू धातु से बनता है। इस का भाव यह है कि, प्रकृष्ट गतिद्वारा शत्रु को दूर फेंकना।

यह जो निश्चलता तथा गतिशून्यता की तामसिक अवस्था है, इसको श्रेष्ठ तथा उन्नति की ओर बढनेंकी भावना को अपने अन्दर धारण करके दूर किया जा सकता है। और निर्ऋति से उत्पन्न बुरे स्वप्नों को दूर करने का भी यही श्रेष्ठ उपाय है कि मनुष्य निरन्तर गति करें। उन्नति की ओर पग बढायें, तामसी तथा आलसी मनुष्यों की तरह प्रारब्ध का आश्रय कर हाथ पर हाथ धर कर न बैठा रहे।

दूसरे 'निर्ऋतिके पुत्र' का भाव यह हुआ कि स्वप्न स्वयं निर्ऋति को पैदा करनेवाला है। जो मनुष्य सदा स्वप्न लेते रहते हैं, वे निर्ऋति के शिकार बन जाते हैं। इसलिये जिस प्रकार निर्ऋति बुरे बुरे स्वप्नों को पैदा करनेवाली है, उसी प्रकार स्वप्न भी बढकर निर्ऋति को पैदा कर देते हैं।

अब निर्ऋति से उत्पन्न अच्छे स्वप्न का भी स्वरूप दिखाते हैं। जब मनुष्य पर निर्ऋति की अति हो जाती है, किसी भी उपाय से वह उस से अपना पिण्ड नहीं छुडा सकता, तो अन्तमें सर्व दुःखहन्ता, नियन्ता प्रभुकी शरण में वह पहुंचता है और इस प्रकार प्रभुभक्ति में मग्न स्वप्नों का आगार बन जाता है। दूसरे जब मनुष्य दूसरों को निर्ऋति अर्थात् कष्ट आदि में देखता है, तो उस का हृदय पसीजता है, वह उनके कष्टों को दूर करने के लिये कटिबद्ध होता है, नानाविध उपाय सोचता है। इस प्रकार दूसरों की निर्ऋति को दूर करने के लिये वह भद्र स्वप्न लेता है।

अभूति का पुत्र—

अथर्व० १६।५।५ में स्वप्न को अभूतिका पुत्र बताया गया है। मन्त्र इस प्रकार है।

'विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि'

अर्थात् हे स्वप्न! हम तेरी उत्पत्तिको जानते हैं, तू अभूति का पुत्र है। अभूति का सामान्य अर्थ अभाव है। इस का तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य के पास जिस चीजका अभाव हो, वह उसके स्वप्न लिया करता है। एक मनुष्य गरीब है, अपनी सामान्य इच्छाओं की पूर्ति के लिये भी उसके पास ऐश्वर्य नहीं, तो वह रातदिन ऐश्वर्यके ही स्वप्न लिया करता है। एक मनुष्यका स्वास्थ्य खराब

रहता है, वह भी सदा स्वास्थ्यप्राप्ति के ही स्वप्न लिया करता है। इसी प्रकार जिस जिस वस्तु का अभाव मनुष्य में हुआ करता है, वह मनुष्य उसी उसी वस्तु के स्वप्न सदा लिया करता है। परन्तु एक बातका ध्यान और रखना चाहिये और वह यह कि यहाँ अभूति से तात्पर्य सामान्य अभाव से नहीं है। किसी मनुष्य के पास सवारी के लिये मोटार नहीं है, तो हम यह नहीं कह सकते कि, मोटर के अभाव से उस मनुष्य को बुरे बुरे स्वप्न आते हैं। अभूति का अर्थ है, अनिवार्य भूति का न होना और भूति उस ऐश्वर्य को कहते हैं, जिसका होना प्रत्येक मनुष्य के लिये नितान्त आवश्यक है। भूति और अभूति इन दोनों का प्रत्येक मनुष्य के साथ सम्बन्ध है। वेदमें आता है—

> भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः।
> क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनुप्राविशन्॥
> (अ० ११।८।२१)

अर्थात् भूति, अभूति, राति, अराति और सब प्रकार की भूख और प्यास शरीरधारण के साथ साथ मनुष्य में प्रविष्ट होते हैं।

इस का भाव यह है कि, मनुष्य जब शरीर धारण कर पृथिवी पर अवतरित होता है, तब उसके साथ साथ भूति, अभूति, भूख, प्यास आदि भी आते हैं। वह भूति अर्थात् ऐश्वर्य दो प्रकार का है—

१. आधिभौतिक।
२. आध्यात्मिक।

आधिभौतिक ऐश्वर्य, धन, सम्पत्ति आदि प्राकृतिक ऐश्वर्य कहलाता है और आध्यात्मिक ऐश्वर्य सुबुद्धि, सुजनता, सत्यता, श्रेष्ठ गुण तथा स्वास्थ्य आदि शारीरिक विभूति ये सब आध्यात्मिक विभूति कहलाती हैं। इसी प्रकार अभूति भी दो प्रकार की हुई— आधिभौतिक और आध्यात्मिक।

जिस मनुष्यके पास धन, सम्पत्ति आदि प्राकृतिक ऐश्वर्य नहीं है, वह निर्धन मनुष्य अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकनेके कारण बुरे बुरे स्वप्न लिया करता है। इसी प्रकार जिस मनुष्य के पास आध्यात्मिक भूति नहीं, अर्थात् सज्जनता, सुबुद्धि आदि श्रेष्ठ गुण नहीं, वह मनुष्य भी अविवेक, अज्ञान आदि के द्वारा सदा कष्ट में पड़ा रहने के कारण बुरे बुरे स्वप्न देखता है और यदि वह भावात्मक रूपमें दुष्टबुद्धि हो, तो वह अपनी आदतसे लाचार सबकी हानि पहुंचानेके लिये सदा नाना भांति के षड्यन्त्र रचता रहता है।

और जिस मनुष्य के पास आधिभौतिक भूति तो हो, परन्तु आध्यात्मिक भूति न हो तो वह मनुष्य भी बुरे बुरे स्वप्न देखता है। आध्यात्मिक भूतिरहित मनुष्य अपने भोगविलास तथा ऐश्वर्य के मदमें अन्धा हुआ हुआ पापादि करने से नहीं हिचकता। इसलिये वह बुरे बुरे स्वप्न लिया करता है। एक बात का और ध्यान रखना चाहिये, और वह यह कि बुरे स्वप्नों को दूर करने में आधिभौतिक भूति की अपेक्षा आध्यात्मिक भूति अत्यन्त आवश्यक है। एक आदमी के पास प्राकृतिक धन, सम्पत्ति तो नहीं है, परन्तु शिक्षा आदि के द्वारा उसमें आध्यात्मिक भूति बहुत है, तो वह मनुष्य बुरे स्वप्नोंका शिकार नहीं बनता। ऋषि, महर्षि उपर्युक्त बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं। क्योंकि बुरे स्वप्नों का आना बुरे मन तथा अनियन्त्रित मन पर आश्रित होता है। इसलिये बुरे स्वप्नों को दूर करने के लिये आधि-भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों भूतियोंका होना आवश्यक है। परन्तु आध्यात्मिक भूति का होना, तो नितान्त आवश्यक है।

वेदमें भी भूति और अभूति के सम्बन्ध में कहा है कि—

"भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनम्" (यजु. ३०।१७)

अर्थात् भूतिके लिये जागना और अभूतिके लिये सोना।

इसका भाव यह हुआ कि, यदि भूति प्राप्त करनी है, तो निद्रा छोड़ कर जागना पड़ेगा। जो मनुष्य सदा सब बातों में जागरूक रहता है, वह भूति प्राप्त करता है। और जो मनुष्य सोता रहता है, उस मनुष्य को अभूति आ घेरती है। अभूति इस बातका चिह्न है कि, वह मनुष्य आलसी व प्रमादी है, वह सोता रहता है। इस प्रकार अभूति मनुष्य में दुःस्वप्नों को पैदा करने में बड़ा भारी कारण है।

परन्तु जब मनुष्य अपने अन्दर किसी चीज का अभाव देखकर दुःस्वप्न लेने अथवा हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहने की अपेक्षा उसे प्राप्त करने के लिये उपाय सोचता है, और उद्यम करता है, तब उसके अन्दर भद्र स्वप्न पैदा होते हैं। जहां तो अभूति श्रेष्ठ मार्गद्वारा ऐश्वर्य प्राप्त करना और अपनी बुराइयों पर नियन्त्रण करना सिखाती है, वहां

भद्र स्वप्न पैदा होते हैं, परन्तु जहां अभूति निराशा व निरुद्यम वृत्ति को पैदा करती है, और जिस के प्रभाव से जिस किसी भी प्रकार से ऐश्वर्य प्राप्त करना ही अन्तिम उद्देश बन जाता है, वहां वह बुरे स्वप्नों को पैदा करनेवाली होती है। अथवा दूसरों की अभूति को देख कर भी मनुष्य में उसको दूर करने के लिये भद्र स्वप्न पैदा हो सकते हैं। इस प्रकार अभूति भद्र स्वप्नों को भी पैदा करनेवाली है।

निर्भूति का पुत्र—

हम अभी ऊपर यह देख चुके हैं कि, जिस मनुष्य के पास आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों प्रकार के ऐश्वर्य होते हैं, वह स्वप्न से नितान्त दूर होता है। परन्तु यदि कालान्तर में दौर्भाग्यवश वे दोनों ऐश्वर्य मनुष्य में से निकल जावें, तो वह मनुष्य दुष्वप्न्यों का शिकार बन जाता है। इसी भाव को अथर्व० १६।५।४ में दुष्वप्न्य को निर्भूति का पुत्र कहकर इस प्रकार प्रकट किया गया है ×। अर्थात् पहले तो ऐश्वर्य हो, फिर वह निकल जाये, तो दुष्वप्न्य मनुष्य को आ घेरते हैं। आध्यात्मिक सम्पत्ति से रहित केवलमात्र आधिभौतिक ऐश्वर्य को ही रखता हुआ मनुष्य जिस प्रकार अपनी लक्ष्मी के मदमें अन्धा हुआ हुआ नाना भांति के दुष्वप्न्य देखता है, उसी प्रकार उस लक्ष्मी के निकल जाने पर गरीबी अवस्था में आकर वह मनुष्य दुष्वप्नों का शिकार बन जाता है और दूसरे आध्यात्मिक ऐश्वर्य को रखनेवाला मनुष्य भी जब कुसंगति में पडकर अपनी आध्यात्मिक सम्पत्ति को खो बैठता है, तो सामान्य मनुष्यों की तरह वह भी दुष्वप्न्य आदि का शिकार बन जाता है। भौतिक ऐश्वर्य के ऊपर तो मनुष्य का कोई अधिकार नहीं, पता नहीं वह कब धोखा दे जाय। परन्तु आध्यात्मिक ऐश्वर्य का रखना या निकाल देना मनुष्य के अपने ऊपर निर्भर है। यदि आध्यात्मिक ऐश्वर्य बना रहे, फिर चाहे भौतिक ऐश्वर्य विनष्ट भी हो जाये, तो भी मनुष्य दुष्वप्न्यों का शिकार नहीं बन सकता। इसलिये आध्यात्मिक ऐश्वर्य को स्थिर रखने के लिये मनुष्य को सदा श्रेष्ठ गुणों का धारण तथा सत्संगति आदि करते रहना चाहिये। तभी वह दुष्वप्न्यों के आक्रमणों से अपने को बचा सकता है।

स्वप्न का निर्भूति का पुत्र कहलाने का दूसरा भाव यह है कि, जो मनुष्य दोनों प्रकार की भूतियों से सम्पन्न हो, परन्तु दौर्भाग्य से कुसंगति आदिमें पडकर आलसी व प्रमादी हो जाये, जागरूक रहने की अपेक्षा सोता रहे, शेखचिल्लियों की तरह मनोमोदक बनाता रहे, तो उस मनुष्य की दोनों भूतियां विनष्ट हो जायेंगी। इसलिये स्वप्न निर्भूति के लाने में भी कारण बनता है।

दूसरी तरफ निर्भूति के द्वारा मनुष्य में भद्र स्वप्न इस प्रकार पैदा हो सकते हैं कि, इस भौतिक ऐश्वर्य के निकल जाने पर मनुष्य यह सोचे कि, यह तो चञ्चल माया है। इस से मोह करना अपने को पथभ्रष्ट करना है। यह सोचकर वह इस भौतिक माया के पीछे भागना छोड देता है और परमात्मा की भक्ति के भद्र स्वप्न लेने लगता है।

पराभूति का पुत्र—

अथर्व० १६।५।७ में स्वप्न को पराभूति का पुत्र बताया गया है। पराभूति पराभवको कहते हैं। कोई मनुष्य किसी से पराभवको प्राप्त हो जाये, नीचा देख ले, तो वह पराभूत मनुष्य अपने प्रतिद्वन्द्वी के प्रति द्वेषबुद्धि रखने लगता है। और उसके विनाश के लिये नाना भांति के बुरे बुरे स्वप्न लिया करता है। अथवा पराभव करनेवाले का उसके ऊपर इतना आतंक बैठ जाता है कि, वह मनुष्य रात्रि को भी सुख की नींद नहीं सो सकता। रात्रि को स्वप्न भी उसे उसी के आते हैं। इसलिये पराभव को स्वप्न का पैदा करनेवाला बताया गया है।

मनुष्य को यह पराभव केवल मनुष्यसे ही नहीं देखना पडता। अचेतन पदार्थ भी मनुष्य को पराभूत कर देते हैं। किसी पदार्थ व विषय की प्राप्ति में मनुष्य अत्यधिक परिश्रम करे और फिर उसका कोई अभीष्ट परिणाम न निकले, तो वह मनुष्य उस अचेतन पदार्थ से पराभूत हो जाता है। रातदिन उसे उसी पदार्थ के स्वप्न आते रहते हैं।

[क्रमशः]

× " निर्भूत्याः पुत्रोऽसि " अर्थात् हे स्वप्न ! तू निर्भूति का पुत्र है।

पूजनीय वीर, शत्रुदलका पराभव करनेहारी शक्तिसे युक्त होकर, वैरभावरहित बल पाकर प्रसन्नचेता हो जाते हैं।

(२१८) ते धृष्णुया स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति। (ऋ. ५।५२।२)

वे वीर शत्रुदलकी धज्जियाँ उडानेवाले तथा स्थायी बलके सहायक हैं।

ते यामन् शश्वतः धृषद्विनः त्मना आ पान्ति।

वे शत्रुपर आक्रमण करते समय शाश्वत विजयी सामर्थ्यसे स्वयं ही चारों ओर रक्षाका प्रबंध करते हैं।

(२१९) ते स्पन्द्रासः उक्षणः शर्वरीः अति स्कन्दन्ति। (ऋ. ५।५२।३)

वे शत्रुदलको मारे डरके स्पन्दित करनेवाले तथा बलिष्ठ हैं और वीरताके कारण रात्रीके समय भी दुश्मनोंपर धावा कर देते हैं।

महः मन्महे।

हम वीरोंके तेजका मनन करते हैं।

(२२०) विश्वे मानुषा युगा मर्त्यं रिषः पान्ति, धृष्णुया स्तोमं दधीमहि। (ऋ. ५।५२।४)

सभी वीर मानवी पीढियोंमें शत्रुओं से मानवोंको सुरक्षित रखते हैं, इसलिए हम उन वीरोंके शौर्यपूर्ण काव्य स्मरणमें रखते हैं।

(२२१) अर्हन्तः सुदानवः असामिशवसः दिवः नरः। (ऋ. ५।५२।५)

पूजनीय, दानशूर तथा संपूर्णतया बलिष्ठ वीर तो सचमुच स्वर्गके नेता वीर हैं।

(२२२) रुक्मैः युधा ऋष्वाः नरः ऋष्टीः एनाम् असृक्षत, भानुः त्मना अर्त। (ऋ. ५।५२।६)

हारों तथा युद्ध शक्तियोंसे विभूषित बडे भारी नेता वीर अपने शस्त्र इन शत्रुओंपर छोडते हैं, तब उनका तेज स्वयं ही उनके निकट चला जाता है। [वे तेजस्वी दीख पडते हैं।]

(२२४) सत्यशवसं ऋभ्वसं शर्धः उच्छंस, स्पन्द्राः नरः शुभे त्मना प्रयुञ्जत। (ऋ. ५।५२।८)

सत्य बल से युक्त, आक्रामक सामर्थ्यकी सराहना करो। शत्रुको विकम्पित करनेवाले वे वीर अच्छे कर्मोंमें स्वयंही जुट जाते हैं।

(२२५) रथानां पव्या ओजसा अद्रिं भिन्दन्ति। (ऋ. ५।५२।९)

अपने रथके पहियों से तीव्रतापूर्वक पर्वतकोभी छिन्नविच्छिन्न कर डालते हैं।

(२२६) आपथयः विपथयः अन्तःपथाः अनुपथाः विस्तारः यज्ञं ओहते। (ऋ. ५।५२।१०)

समीपवर्ती, विरोधी, गुप्त तथा अनुकूल इत्यादि विविध मार्गोंसे प्रयाण करनेवाले वीर अपना बल विस्तृत करके शुभ कर्मके लिए उसका वहन करते हैं।

(२२७) नरः नियुतः परावतः ओहते, चित्रा रूपाणि दृश्यां। (ऋ. ५।५२।११)

नेता वीर समीप या दूर रहकर यज्ञके लिए बल जोडकर लाते हैं, उस समय उनके अनेक रूप बडेही दर्शनीय दीख पडते हैं।

(२२८) कुभन्यवः उत्सं आनृतुः, ऊमाः दृशि त्विषे आसन्। (ऋ. ५।५२।१२)

मातृभूमिकी पूजा करनेहारे वीर जलाशयोंका स्तुत करते हैं; वे संरक्षक वीर आँखोंको चौंधियाते हैं।

(२२९) ये ऋष्वाः ऋष्टिविद्युतः कवयः वेधसः सन्ति, नमस्य, गिरा रमय। (ऋ ५।५२।१३)

जो वीर बडे तेजस्वी आयुध धारण करनेहारे, ज्ञानी तथा कवि हैं, उनका अभिवादन या नमन करना और अपनी वाणी से उन्हें हर्षित रखना चाहिए।

(२३०) ओजसा धृष्णवः धीभिः स्तुताः। (ऋ. ५।५२।१४)

अपनी सामर्थ्यसे शत्रुका विनाश करनेहारे वीर बुद्धिपूर्वक प्रशंसित होनेयोग्य हैं।

(२३१) एषां देवान् अच्छ सूरिभिः यामश्रुतेभिः अञ्जिभिः दाना सचेत। (ऋ. ५।५२।१५)

इन दैवी वीरोंके समीप ज्ञानी तथा आक्रमणकी वेलामें विख्यात और गणवेश से विभूषित वीर दान लेकर पहुँचते हैं।

(२३२) गां पृश्निं मातरं प्रवोचन्त। (ऋ. ५।५२।१६)

वे वीर कह चुके हैं कि, गौ तथा भूमि हमारी माता है।

(२३३) श्रुतं गव्यं राधः, अश्व्यं राधः निमृजे। (ऋ. ५।५२।१७)

विख्यात गोधन तथा अश्वधनको भली भाँति धोकर सुस्वच्छ रखता हूँ।

(२३६) मर्याः अरेपसः नरः पश्यन् स्तुहि।

(ऋ ५।५३।३)

इन मानवों निर्दोष वीरोंको देखकर प्रशंसा करो।

(२३७) स्वभानवः अञ्जिषु वाजिषु स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु रथेषु धन्वसु आयाः (ऋ. ५।५३।४)

तेजस्वी वीर गणवेश पहनकर घोडे, माला, हार, अलंकार, रथ एवं धनुष्यका आश्रय करते हैं।

(२३८) जीरदानवः मुदे रथान् अनुदधे।

(ऋ. ५।५३।५)

त्वरित विजयी बननेहारे वीर आनन्दके लिए रथोंपर बैठते हैं।

(२३९) सुदानवः नरः दाशुषे यं कोशं आ अचुच्यवुः, धन्वना अनुयन्ति। (ऋ. ५।५३।६)

दानी एवं नेता वीर उदार पुरुष के लिए जो धनभाण्डार भरकर लाते हैं, उसीके साथ वे धनुर्धारी बनकर प्रयाण करते हैं।

(२४४) शर्धं शर्धं व्रातं-व्रातं गणं-गणं सुशस्तिभिः धीतिभिः अनुक्रामेम (ऋ. ५।५३।११)

प्रत्येक सेनाके विभागके साथ अच्छे अनुशासनसहित भले विचारों से युक्त होकर हम क्रमशः चलते हैं।

(२४६) तोकाय तनयाय अक्षितं धान्यं बीजं वहध्वे, विश्वायु सौभगं अस्मभ्यं धत्तन। (ऋ. ५।५३।१३)

बालबच्चोंके लिए नष्ट न होनेवाला धान्य तुम लाओ और दीर्घ जीवन तथा सौभाग्य हमें प्रदान करो।

(२४७) स्वस्तिभिः अवद्यं हित्वा, अरातीः तिरः निदः अतीयाम, योः शं उस्रि भेषजं सह स्याम।

(ऋ. ५।५३।१४)

कल्याणकारक साधनोंसे दोष दूर करके शत्रुओं तथा गुप्त निन्दकों को दूर हटा दें और एकतासे पाये जानेवाला शांतिसुख एवं तेजस्विता बढानेवाला औषध हम प्राप्त करें।

(२४८) यं त्रायध्वे, सः मर्त्यः सुदेवः समह, सुवीरः असति। (ऋ. ५।५३।१५)

थे वीर जिसका संरक्षण करते हैं, वह अत्यन्त तेजस्वी, महत्वयुक्त वीर बन जाता है।

ते स्याम= हम प्रभुके प्यारे हों

(२४९) पूर्वान् कामिनः सखीन् ह्वय। (ऋ. ५।५३।१६)

पहलेसे परिचित प्रिय मित्रोंको हम अपने समीप बुलाते हैं।

(२५०) स्वभानवे शर्धाय वाचं प्रानज।

द्युम्नश्रवसे महि नृम्णं आर्चत (ऋ ५।५४।१)

तेजस्वी बलका वर्णन करो और तेजस्वी यश पानेवाले वीरोंको बडी भारी देन देकर उनका सत्कार करो।

(२५१) तविषाः वयोवृधः अश्वयुजः परिज्रयः।

(ऋ ५।५४।२।

बलिष्ठ, वयोवृद्ध एवं घोडोंको रथोंमें जोतनेवाले वीर चारों ओर संचार करते हैं।

(२५२) नरः अश्मदिद्यवः पर्वतच्युतः ह्लादुनिवृतः स्तनयदमाः रभसा उदोजसः मुहुः चित्।

(ऋ. ५।५४।३)

हथियारोंसे चमकनेवाले वीर नेता पर्वतोंकोभी हिलानेवाले तथा वज्रोंसे युक्त और वर्णनीय सामर्थ्यसे पूर्ण एवं वेगवान हैं इसलिए विशेष बलिष्ठ होकर बारबार हमले करते हैं।

(२५३) धूनथः शिक्षसः यत् अक्तून् अहानि अन्तरिक्षं रजांसि अज्रान् दुर्गाणि वि, न रिष्यथ।

(ऋ. ५।५४।४)

शत्रुओंको हिलानेवाले वीर बलवान हो जब रातदिन अन्तरिक्ष, धूलिमय भूविभाग एवं बीहड स्थलोंमें से चले जाते हैं, तब वे थकावटकी अनुभूति न लें। [इतनी शक्ति इनमें बढ जाए।]

(२५४) तत् योजनं वीर्यं दीर्घं महित्वनं ततान, यत् यामे अगृभीतशोचिषः अनश्वदां गिरिं नि अयातन।

(ऋ. ५।५४।५)

तुम्हारी आयोजना, पराक्रम, बडा भारी पौरुष बहुतही फैल चुका है, जब तुम शत्रुपर चढाई करते हो, उस वक्त तुम्हारा तेज घटता नहीं, किन्तु जिधर घोडेपर बैठकर जाना भी दूभर प्रतीत हो उधर भी, विकट पहाडपरभी तुम आक्रमण करही डालते हो।

(२५५) शर्धः अभ्राजि, अरमतिं अनु नेषथ।

(ऋ. ५।५४।६)

तुम्हारा बल विद्योतित हो उठा है, आराम न करते हुए

तुम अनुकूल मार्गसे अपने अनुयायियोंको ले चलो।

(२५६) यं सुषूदथ स न जीयते, न हन्यते, न स्रेधति, न व्यथते, न रिष्यति। (ऋ ५।५४।७)

वीर जिसको सहायता पहुँचाते हैं, वह न पराजित होता है, न किसी से माराही जाता है, न विनष्ट होता है, न दुखी बनता है और न क्षीणभी होता है।

(२५७) ग्रामजितः नरः इनासः अस्वरन्।

(ऋ. ५।५४।८)

शत्रुके दुर्गोंको जीतकर अपने अधीन करनेवाले वीर जब वेगसे दुश्मनोंपर चढाई कर डालते हैं, तब वे बडी भारी गर्जना करते हैं।

(२५८) इयं पृथिवी अन्तरिक्ष्या॰ पथ्याः प्रवत्वतीः।

(ऋ. ५।५४।९)

वीरोंके लिए इस पृथ्वीपरके तथा अन्तरिक्षके मार्ग सरल होते जाते हैं।

(२५९) सभरसः स्वर्नरः सूर्ये उदिते मदथ. स्रिधतः अश्वाः न श्रथयन्त, सद्यः अध्वनः पारं अश्नुथ।

(ऋ. ५।५४।१०)

बलिष्ठ वीर सूर्योदय होनेपर प्रसन्न होते हैं। इनके दौडनेवाले घोडे जबतक थक नहीं जाते, तभीतक वे अपने स्थानपर पहुँच जायँ।

(२६०) अंसेषु ऋष्टयः; पत्सु खादयः, वक्षःसु रुक्मा, गभस्त्योः विद्युतः शीर्षसु शिप्राः। (ऋ. ५।५४।११)

वीर सैनिकोंके कंधोंपर भाले, पैरोंमें तोड वक्षस्थलपर सुवर्णहार, हाथोंमें तलवार और मस्तकपर शिरोवेष्टन विद्यमान हैं।

(२६१) अगृभीतशोचिषं रुशत् पिप्पलं विधूनुथ, वृजना समचयन्त, अतित्विषन्त (ऋ. ५।५४।१२)

अत्यन्त तेजस्वी, परिपक्व फलको वृक्ष हिलाकर प्राप्त करो, (प्रयत्नपूर्वक फल पा जाओ) बलोंका संघटन करो और तेजस्वी बनो।

(२६२) रथ्यः वयस्वन्तः रायः स्याम, न युच्छति सहस्रिणं ररन्त। (ऋ. ५।५४।१३)

हमारे मार्ग अन्न तथा धनोंसे युक्त हों; न नष्ट होनेवाला हजारोंगुना धन दे दो।

(२६३) यूयं स्पार्हवीरं रयिं, सामविप्रं ऋषिं अवथ; भरताय अर्वन्तं वाजं, राजानं श्रुष्टिमन्तं धत्थ।

(ऋ. ५।५४।१४)

वर्णन करनेयोग्य वीरोंसे युक्त धन हमें दो, सामगायन करनेवाले तत्त्वज्ञानीकी रक्षा करो, लोगोंके पोषणकर्ताको घोडे देकर पर्याप्त अन्नभी दे दो और उसी प्रकार नरेशको वैभवशाली बना दो।

(२६४) तत् द्रविणं यामि, येन नॄन् अभि ततनाम।

(ऋ ५।५४।१५)

वह धन चाहिए, जो सभी लोगोंमें विभक्त किया जा सके।

(२६५) भ्राजदृष्टयः रुक्मवक्षसः बृहत् वयः दधिरे, सुयमेभिः आशुभिः अश्वैः ईयन्ते। (ऋ. ५.५५।१)

चमकीले हथियार धारण करनेहारे और वक्षस्थलपर स्वर्णमुद्रा रखनेवाले वीर बहुतसा अन्न समीप रखते हैं और भली भाँति सिखाये हुए घोडोंपर बैठकर जाते हैं।

रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत।

तुम्हारे रथ शुभ कार्य के लिए जानेवालोंके मार्गोंका अनुसरण करें।

(२६६) यथा विद. स्वयं तविषीं दधिध्वे. महान्तः उर्विया बृहत् विराजथ। (ऋ ५।५५।२)

चूँकि तुम ज्ञान पाकर स्वयंही बलका धारण करते हो, अतः तुम सचमुच बडे हो और अपनी मातृभूमिकी सेवा के लिए जागृत रहकर बहुत ही सुहाते हो।

(२६७) सुभ्वः साकं जाताः साकं उक्षिता॰ नरः श्रिये प्रतरं वावृधुः। (ऋ ५।५५।३)

अच्छे कुलीन, संघमें रहकर सामुदायिक ढंगसे अपना बल प्रकट करनेहारे वीर सबकी प्रगतिके लिएही अपनी शक्ति बढाते हैं।

(२६८) वः महित्वनं आभूषेण्यं, अस्मान् अमृतत्वे दधातन। (ऋ. ५।५५।४)

तुम्हारा बडप्पन तुम्हारे लिए भूषणावह है, हमें सुखमें रखो।

(२७०) यत् अश्वान् धूर्षु अयुग्ध्वं हिरण्ययान् अत्कान् प्रत्यमुग्ध्वं विश्वाः स्पृध॰ वि अस्यथ।(ऋ. ५।५५।६)

जब तुम घोडोंको रथके अग्रभागोंमें जोतते हो और अपने सुवर्ण कवचोंको पहनते हो, तब तुम समूचे शत्रुओंको सुदूर भगा देते हो।

(२७१ वः पर्वताः नद्यः च न वरन्त, यत्र अचिध्वं तत् गच्छथ. द्यावापृथिवी परि याथन।

(ऋ. ५।५५।७)

तुम वीरोंके मार्गमें पहाड या नदियाँ रुकावट नहीं डाल सकती हैं। जिधर तुम्हें चढाई करनी हो, उधर मजेमें चले जाओ। आकाशसे ले भूमितक मन चाहे उधर तुम घूमते चलो।

(२७२) पूर्वं, नूतनं, यत् उद्यते, शस्यते, तस्य नवेदसः भवथ। (ऋ. ५।५५।८)

जो कुछभी बढिया और सराहनीय है, चाहे वह पुराना या नया हो, तुम उससे ठीक ठीक परिचित रहो।

(२७३) अस्मभ्यं बहुलं शर्म वियन्तन, नः मृळत।
(ऋ. ५।५५।९)

हमें बहुत सुख दे दो और हमें आनन्दित करो।

(२७४) यूयं अस्मान् अंहतिभ्यः वस्यः अच्छ निः नयत। वयं रयीणां पतयः स्याम (ऋ. ५।५५।१०)

हमें दुर्दशासे छुडानेके लिए तुम, उपनिवेश बसाने योग्य स्थल की ओर हमें ले चलो और ऐसा प्रबंध करो कि, हम धनके अधिपति हों।

(२७५) शर्धन्तं रुक्मेभिः अञ्जिभिः पिंशं गणं अद्य विशः भव ह्वय। (ऋ. ५।५६।१)

शत्रुध्वंसक और आभूषणोंसे अलंकृत वीरोंके दलको प्रजाके हितके लिए इधर बुलाओ।

(२७६) आशसः भीमसंदृशः हृदा वर्धं।
(ऋ. ५।५६।२)

प्रशंसाके योग्य और भीषण शरीरवाले इन वीरोंको अंतःकरणपूर्वक हर्षित करो, [ऐसे भीमकाय तथा सराहनीय वीर जिस प्रकार बढने लगें, ऐसी लगन से व्यवस्था करो।]

(२७७) मीळ्हुष्मती पराहता मदन्ती अस्मत् आ एति। (ऋ. ५।५६।३)

स्नेहयुक्त और जिसे शत्रु पराभूत नहीं कर सके, ऐसी वह सेना सहर्ष हमारी ओरही बढती चली आ रही है।

वः अमः शिमीवान् दुध्रः भीमयुः।
तुम्हारा बल भीषण है, क्योंकि कार्यकुशल शत्रु भी तुम्हें घेर नहीं सकते।

(२७८) ये ओजसा यामभिः अश्मानं गिरिं स्वर्यं पर्वतं प्र च्यावयन्ति। (ऋ. ५।५६।४)

जो वीर अपने सामर्थ्य से आक्रमण करके पथरीले और आसमानको छूनेवाले पहाडोंको तोड देते हैं।

(२७९) समुक्षितानां एषां पुरुतमं अपूर्व्यं हुवे।
(ऋ. ५।५६।५)

इकट्ठे बढे हुए इन वीरोंके इस बडे अपूर्व दलकी मैं सराहना करता हूँ।

(२८०) रथे अरुषीः, रथेषु रोहितः आजिरा वहिष्ठा हरी वोळ्हवे धुरि युञ्जध्वम्। (ऋ. ५।५६।६)

तुम रथमें लाल रंगवाली हिरनियाँ, रथोंमें कृष्णसार और वेगवान, खींचनेकी क्षमता रखनेवाले घोडे रथ ढोनेके लिए रथमें जोतते हो।

(२८१) अरुषः तुविस्वनिः दर्शतः वाजी इह धायि स्म वः यामेषु चिरं मा करत्, तं रथेषु प्रचोदत।
(ऋ. ५।५६।७)

रक्तवर्णका, हिनहिनानेवाला सुन्दर घोडा यहाँपर जोत रखा है। अब आक्रमण करनेमें देरी न करो, रथमें बैठकर उसे हाँकना शुरु करो।

(२८२) यस्मिन् सुरणानि, श्रवस्युं रथं वयं आ हुवामहे। (ऋ. ५।५६।८)

जिसमें रमणीय वस्तुएँ रखी हैं ऐसे यशस्वी रथकी सराहना हम कर रहे हैं।

(२८३) यस्मिन् सुजाता सुभगा मीळ्हुषी महीयते, तं वः रथेशुभं त्वेषं पनस्युं शर्धं आहुवे।
(ऋ. ५।५६।९)

जिसमें अच्छे भाग्ययुक्त तथा प्रशंसनीय शक्तिका महत्त्व प्रकट होता है, उस तुम्हारे रथमें शोभायमान, तेजस्वी, स्तुत्य बलकी मैं सराहना करता हूँ।

(२८४) सजोषसः हिरण्यरथाः सुविताय आगन्तन
(ऋ. ५।५७।१)

तुम एकही इच्छासे प्रभावित होकर और सुवर्णके रथमें बैठकर हमारा हित करनेके लिए इधर पधारो।

(२८५) पृश्निमातरः वाशीमन्तः ऋष्टिमन्तः मनीषिणः सुधन्वानः इषुमन्तः निषङ्गिणः स्वश्वाः सुरथाः सु-आयुधाः शुभं वियाथन। (ऋ. ५।५७।२)

भूमिको माताकी नाईं आदरपूर्वक देखनेहारे वीर कुल्हाडे तथा भाले लेकर, मननशील बनकर, बढिया धनुष्यबाण एवं तूणीर साथमें लेकर उत्कृष्ट घोडे, रथ और हथियार धारण कर जनताका हित करनेके लिए चले आते हैं।

(१८६) वसु दाशुषे पर्वतान् धूनुथ। वः यामनः भिया वना निजिहीते। यत् शुभे उग्राः पृषतीः अयुग्ध्वं, पृथिवीं कोपयथ। (ऋ. ५।५७।३)

उदार मानवोंको धन देनेके लिए तुम पहाड़ोंतक को हिला देते हो, तुम्हारी चढ़ाईके भय से वन काँपने लगते हैं जब कल्याण करनेके लिए तुम जैसे शूर वीर अपने रथको धब्बेवाली हिरनियाँ जोड़ देते हो, तब समूची पृथ्वी बौखला उठती है।

(१८७) वाततिवषः सुसदृशः सुपेशसः पिशङ्गाश्वाः अरुणाश्वाः अरेपसः प्रत्वक्षसः महिना उरवः। (ऋ. ५।५७।४)

तेजस्वी, समान रूपवाले, आकर्षक रूपवाले, भूरे और कालिमामय घोड़े रखनेवाले, दोषरहित तथा शत्रुको विनष्ट करनेवाले वीर अपने महात्म्यसे बहुत बड़े हैं।

(१८८) अञ्जिमन्तः सुदानवः त्वेष-संदृशः अनवभ्रराधस जनुषा सुजातासः रुक्मवक्षसः अर्काः अमृतं नाम भेजिरे। (ऋ. ५।५७।५)

गणवेश पहनकर उदार, तेजस्वी, धन सुरक्षित रखनेवाले कुलीन परिवारमें पैदा हुए, गलेमें स्वर्णमुद्रानिर्मित हार डाले हुए सूर्यतुल्य तजस्वी प्रतीत होनेवाले वीर अमर यश पाते हैं।

(१८९) वः अंसयोः ऋष्टयः, बाह्वोः सहः ओजः बलं आधिहितं, शीर्षसु नृम्णा, रथेषु विश्वा आयुधा, तनूषु श्रीः आध पिपिशे। (ऋ ५।५७।६)

तुम्हारे कंधोंपर भाले, बाँहोंमें बल, सरपर साफे, रथोंमें सभी आयुध और शरीरपर शोभा है।

(१९०) गोमत् अश्ववत् रथवत् सुवीरं चन्द्रवत् राधः नः दद, नः प्रशस्ति कृणुत, वः अवसः भक्षीय। (ऋ. ५।५७।७)

गौओं, घोड़ों, रथों, वीरपुरुषों से युक्त और विपुल सुवर्ण से पूर्ण अन्न हमें दो, हमारे वैभवको बढ़ाओ और तुम्हारा संरक्षण हमें मिलता रहे।

(१९१) तुविमघासः ऋतज्ञाः सत्यश्रुतः कवयः युवानः बृहद्गुक्षमाणाः। (ऋ. ५।५७।८)

बहुत ऐश्वर्यवाले, सत्य जाननेहारे, ज्ञानी, युवक तथा बलवान बनो।

(१९२) स्वराजः आश्वश्वाः अमवत् वहन्ते, उत अमृतस्य ईशिरे, एषां नव्यसीनां तविषीमन्तं गणं स्तुषे। (ऋ. ५।५८।१)

स्वयंशासक होते हुए ये वीर जल्द जानेवाले घोड़ोंपर चढ़कर या ऐसे घोड़े जोतकर वेगपूर्वक प्रयाण करते हैं, अमरपन पाते हैं। इनके स्तुत्य और बलवान संघकी स्तुति करता हूँ।

(१९३) ये मयोभुवः, महित्वा अमिताः तुविराधसः नून तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिन दातिवारं त्वेषं गणं वंदस्व। (ऋ. ५।५८।२)

सुख देनेहारे, जिनका बड़प्पन असीम हो ऐसे, सिद्धि पानेवाले वीर हैं उनके बलिष्ठ आभूषणयुक्त, शत्रुको हिला देनेवाले, कुशल, उदार, तेजस्वी संघको प्रणाम करो।

(१९५) यूयं जनाय इयं विभ्वतष्टं राजान जनयथ युष्मत् मुष्टिहा बाहुजूतः एति। युष्मत् सदश्वः सुवीरः एति। (ऋ ५।५८।४)

तुम जनताके लिए ऐसे नरेशका सृजन करते हो, जो बड़े बड़े प्रगतिशील कार्य करनेका भागी बने। तुम जैसे वीरोंमें से ही विशेष बाहुबलसे युक्त मुष्टियोद्धा (Boxer) शूर, विख्यात हो उठता है और तुममें से ही अच्छे घोड़ोंको समीप रखनेवाला श्रेष्ठ वीर जनताके सम्मुख आ उपस्थित होता है।

(१९६) अचरमाः अकवाः उपमासः रभिष्ठाः पृश्नेः पुत्राः स्वया मत्या सं मिमिक्षुः। (ऋ. ५।५८।५)

समान दशामें रहनेवाले अवर्णनीय, समान कदवाले, वेगशाली और मातृभूमिके सुपुत्र होते हुए ये वीर अपने विचारोंसेही परस्पर मेलसे बर्ताव रखते हैं।

(१९७) यत् पृषतीभिः अश्वैः वीळुपविभिः रथेभिः प्रायासिष्ट, आपः क्षोदन्ते, वनानि रिणते, द्यौः अवक्रन्दतु। (ऋ. ५।५८।६)

जब धब्बेवाले घोड़े जोतकर सुदृढ पहियोंसे युक्त रथोंमें आरूढ हो तुम आक्रमण शुरू करते हो, उस समय पानीमें भारी खलबली हो जाती हैं, वन विनष्ट होते हैं और आकाशभी दहाड़ने लगता है।

(१९८) एषां यामन् पृथिवी प्रथिष्ट, स्वं शवः धुः, अश्वान् धुरि आयुयुञ्ज। (ऋ. ५।५८।७)

इनके आक्रमणोंके फलस्वरूप मातृभूमिकी ख्याति तथा प्रसिद्धि हो चुकी या भूमि समतल हो गयी। उनका बल प्रकट हुआ और इमले चढानेके समय उन्होंने अपने घोडे रथोंमें जोते थे।

(३००) सुवित्ताय दावने प्र अक्रन्, पृथिव्यै ऋतं प्रभरे, अश्वान् उक्षन्ते, रजः आ तरुषन्ते, स्वं भानुं अर्णवैः अनुश्रथयन्ते। (ऋ. ५।५९।१)

सबका हित तथा सबकी मदद करने के लिए इस कार्यका प्रारंभ हो चुका है। मातृभूमिका स्तोत्र पढो, घोडे जोत रखो, अन्तरिक्षमेंसे दूर चले जाओ और अपना तेज समुद्र यात्राओंसे चारों ओर फैलाओ।

(३०१) एषां अमात् भियसा भूमिः एजाति। दूरेदृशः ये एमभि चितयन्ते ते नरः विदथे अन्तः महे येतिरे (ऋ. ५।५९।२)

इन वीरोंके बलसे उत्पन्न भयाकुल भावसे भूमण्डल थर्रा उठता है। जो दूरदर्शी वीर अपने वेगोंसे पहचाने जाते हैं, वे युद्धोंमें महत्त्व पानेके लिए प्रयत्न करते रहते हैं।

(३०२) रजसः विसर्जने सुभ्वः श्रियसे चेतथ। (ऋ. ५।५९।३)

अँधेरा दूर करनेके लिए अच्छे वीर बनकर ये ऐश्वर्य तथा वैभव बढानेके लिए प्रयत्नशील बनते हैं।

(३०३) सुवित्ताय दावने प्रभरध्वे, यूयं भूमिं रेजथ। (ऋ. ५।५९।४)

अच्छे ऐश्वर्यका दान करनेके लिए तुम उसे बटोरते हो। इसलिए तुम पृथ्वीकोभी विचलित कर डालते हो।

(३०४) सबन्धवः प्रयुधः प्रयुयुधुः। नरः सुवृधः ववृधुः। (ऋ. ५।५९।५)

परस्पर भ्रातृभावसे रहकर बडे अच्छे योद्धा लडाईमें निरत होते हैं और ये नेता हमेशा बढते रहते हैं।

(३०५) ते अज्येष्ठा अकनिष्ठासः अमध्यमासः उद्भिदः महसा विवावृधुः। जनुषा सुजातासः पृश्निमातरः दिवः मर्याः नः अच्छ आजिगातन। (ऋ. ५।५९।६)

इन वीरोंमें कोईभी श्रेष्ठ नहीं है, कोई निचले दर्जेका नहीं और न कोई मँझली श्रेणीका है। उन्नतिके लिए संकटोंके जालको तोडनेवाले ये वीर अपने अन्दर विद्यमान बडप्पनसे बढते हैं; कुलीन परिवारमें उत्पन्न और मातृभूमिकी उपासना करनेवाले दिव्य मानव हमारे मध्य आकर निवास करें।

(३०६) ये श्रेणीः ओजसा अन्तान् बृहतः सानुनः परिपप्तुः। एषां अश्वासः पर्वतस्य नभनून् प्राचुच्यवुः। (ऋ. ५।५९।७)

ये वीर कतारमें रहकर वेगपूर्वक पृथ्वीके दूसरे छोरतक या बडे बडे पहाडोंपरभी चले जाते हैं। इनके घोडे पहाडकेभी टुकडे कर डालते हैं।

(३०७) एते दिव्यं कोशं आचुच्यवुः। (ऋ. ५।५९।८)

ये वीर दिव्य भाण्डारको चारों ओर उण्डल देते हैं, याने सारे धनका विभजन चतुर्दिक् कर देते हैं, ताकि कहींभी विषमता न रहे।

(३०८) ये एकएकः परमस्याः परावतः आयय। (ऋ. ५।६१।१)

ये वीर अकेलेही अत्यन्त सुदूरवर्ती प्रदेशोंसे चले आते हैं।

(३१०) एषां जघने चोदः, नरः सक्थानि वियमुः। (ऋ ५।६१।३)

जब इन घोडोंकी जंघापर चाबुक लगता है (तब वे अपनी जाँघें तानने लगते हैं) परन्तु ऊपर बैठनेवाले वीर उनका विशेष नियमन करते हैं, (उन घोडोंको अपनी जांघोंसे पकड रखते हैं)।

(३१२) ये आशुभिः वहन्ते, अत्र श्रवांसि दधिरे। (ऋ. ५।६१।११)

जो वीर घोडोंपर चढकर शीघ्र शत्रुओंपर हमला कर देते हैं, वे बहुत संपत्ति धारण करते हैं।

(३१३) श्रिया रथेषु आ विभ्राजन्ते। (ऋ. ५।६१।१२)

ये वीर अपनी सुषमासे रथोंमें चारों ओर चमकते रहते हैं।

(३१४) सः गणः युवा त्वेषरथः, अनेद्यः, शुभंयावा, अप्रतिष्कुतः। (ऋ. ५।६१।१३)

यह वीरोंका संघ नवयौवनसे पूर्ण, तेजस्वी और आभामय रथमें बैठनेवाला, अनिंदनीय, अच्छे कार्यके लिए हलचल करनेवाला तथा सदैव विजयी है।

(३१५) धूतयः ऋतजाताः अरेपसः यत्र मदन्ति कः वेद? (ऋ. ५।६१।१४)

शत्रुको हिला देनेवाले, सत्यके लिए सचेष्ट निष्पाप वीर किस जगह सहर्ष रहते हैं, भला कोई कह सकता है? या कोई जान लेता है?

(३१६) यूयं इत्था मर्तं प्रणेतारः यामहूतिषु धिया श्रोतारः। (ऋ. ५।६१।१५)

तुम इस भाँति मानवोंको ठीक राहसे ले चलनेवाले हो। अतः हमला करते समय अगर तुम्हें पुकारा जाय, तो तुम जानबूझकर उधर ध्यान दो।

(३१७) रिशादसः काम्या वसूनि नः आववृत्तन। (ऋ. ५।६१।१६)

शत्रुविनाशकर्ता तुम वीर हमें अभीष्ट धन लौटा दो।

[अत्रिपुत्र एवयामरुत् ऋषि।]

(३१८) वः मतयः महे विष्णवे प्रयन्तु। (ऋ. ५।८७।१)

तुम्हारी बुद्धियाँ बडे भारी व्यापक देवकी ओर प्रवृत्त हों।

तवसे धुनिव्रताय शवसे शर्धाय प्रयन्तु।

जिसने व्रत किया हो कि, मैं बलिष्ठ शत्रुओंको हिलाकर खदेड दूँगा ऐसे वीरके वेगपूर्ण सामर्थ्यका वर्णन करनेके लिए तुम्हारी वाणियाँ प्रवृत्त हों।

(३१९) ये महिना प्रजाताः, ये च स्वयं विद्मना प्र जाताः, (तेषां) तत् शवः क्रत्वा न आधृषे, मह्ना अधृष्टासः। (ऋ. ५।८७।२)

वे वीर महत्त्वके कारण प्रसिद्ध हुए हैं, अपने ज्ञानसे विख्यात हुए हैं। उनके बडे पराक्रमके कारण उनके बलको कोई परास्त नहीं कर सकता है और अपने अन्दर विद्यमान महत्त्वके कारण शत्रु उनपर हमले करनेका साहस नहीं कर सकते।

(३२०) सुशुक्वानः सुभ्वः, येषां सधस्थे इरी न आ ईषे, अग्नयः न स्वविद्युतः धुनीनां प्र स्पन्द्रासः। (ऋ. ५।८७।३)

वे वीर अत्यन्त तेजस्वी एवं बडे हैं, उनके घरमें (अपने क्षेत्रमें) उनपर अधिकार प्रस्थापित करनेवाला कोई नहीं। वे अग्नितुल्य तेजस्वी हैं और अपने तेजसे मारक शत्रुओंको भी हिलाकर गिरा देते हैं।

(३२१) सः समानस्मात् सदसः निःचक्रमे, विमहसः शेवृधः विस्पर्धसः जिगाति। (ऋ. ५।८७।४)

वह वीरोंका संघ अपने समान निवासस्थलसे एकही समय बाहर निकल आया, सुख बढानेकी भारी शक्तिसे युक्त वे वीर पारस्परिक होड या स्पर्धा छोडकर पराक्रम करनेके लिये आगे बढने लगे।

(३२२) वः अमवान् वृषा त्वेषः ययिः तविषः स्वनः न रेजयत्, सहन्तः स्वरोचिषः स्थारश्मानः हिरण्ययाः सु-आयुधासः इष्मिणः ऋञ्जत। (ऋ. ५।८७।५)

तुम वीरोंका बलयुक्त, समर्थ, तेजस्वी, वेगवान, प्रभाववाली शब्द तुम्हारे अनुयायियोंको भयभीत न करे। तुम शत्रुका पराभव करनेहारे, तेजस्वी सुवर्णालंकारोंसे विभूषित, बढिया हथियार रखनेवाले तथा अन्नभाण्डार साथ रखनेवाले वीर प्रगतिके लिए प्रगतिशील बनते हो।

(३२३) वः महिमा अपारः, त्वेषं शवः अवतु, प्रसितौ संदृशि स्थातारः स्थन, शुशुक्वांसः नः निदः उरुष्यत। (ऋ. ५।८७।६)

तुम्हारी महिमा अपार है, तुम्हारा तेजस्वी बल हमारी रक्षा करे, शत्रुका हमला हो जाय, तो तुम ऐसी जगह रहो कि, हम तुम्हें देख सकें; तुम तेजस्वी वीर हो, इसलिए निंदकोंसे हमें बचाओ।

(३२४) सुमखाः तुविद्युम्नाः अवन्तु। दीर्घं पृथु पार्थिवं सद्म पप्रथे। अद्भुत-एनसां अज्मेषु महः शर्धांसि आ। (ऋ. ५।८७।७)

अच्छे कर्म करनेहारे, महातेजस्वी वीर हमारी रक्षा करें। भूमंडलपर विद्यमान हमारा घर इन्हीं वीरोंके कारण विख्यात हो चुका है। इन पापसे कोसों दूर रहनेवाले वीरोंके आक्रमणके समय बडे बल दिखाई देने लगते हैं।

(३२५) समन्यवः विष्णोः महः युयोतन, दंसना सनुतः द्वेषांसि अप। (ऋ. ५।८७।८)

उत्साही वीर व्यापक परमात्माकी असीम शक्तियोंसे अपना संबंध जोड दें, अपने पराक्रमसे गुप्त शत्रुओंको दूर हटा दें।

(३२६) वि-ओमनि ज्येष्ठासः प्रचेतसः निदः दुर्धर्तवः स्यात। (ऋ. ५।८७।९)

विशेष रक्षाके अवसरपर श्रेष्ठ ठहरनेवाले ज्ञानी वीर निंदक शत्रुओंके लिए अजेय हों।

[बृहस्पतिपुत्र शंयुऋषि।]

(३२७) सबर्दुघां धेनुं उप आ अजध्वं, अनपस्फुरां सृजध्वम्। (ऋ. ६।४८।११)

उत्तम दूध देनेहारी गौको प्राप्त करो और दुहते समय हलचल न करनेवाली गौको उन्मुक्त छोड दो।

(३१८) या स्वभानवे शर्धाय अमृत्यु श्रवः धुक्षत, तुराणां मृळीके सुम्नैः एवयावरी। (ऋ. ६।४८।१२)

जो गौ, तेजस्वी वीरोंके संघको अमर शक्ति देनेवाला दूध देती है, वह शीघ्रतया कार्य करनेवाले वीरोंके सुखके लिए अनेक प्रकारोंसे संरक्षण करनेवाली बनती है।

(३२९) भरद्वाजाय विश्वदोहसं धेनुं विश्वभोजसं इषं च अवधुक्षत। (ऋ. ६।४८।१३)

जो अन्नका दान पूर्णतया करता है, उसे बढिया दुधारु गौ और पुष्टिकारक अन्न यथेष्ट दे दो।

(३३०) सुक्रतुं मायिनं मन्द्रं सुप्रभोजसं आविशे स्तुषे। (ऋ ६।४८।१४)

अच्छे कर्म करनेहारे, कुशल, आनन्दवर्धक, अन्न देनेवाले वीरकी मैं स्तुति करता हूँ, ताकि वह हमारा अच्छा पथप्रदर्शक बने।

(३३१) त्वेषं अनर्वाणं शर्धः वसु सुवेदाः, यथा चर्षणिभ्यः सहस्रा आकारिषत्, गूळ्हा वसु आविःकरत्। (ऋ. ६।४८।१५)

तेजस्वी शत्रुरहित बल तथा धन मिल जाय, उसी प्रकार सारे मानवोंको हजारों प्रकारके धन मिलें और छिपा पडा धन प्रकट हो।

(३३२) वामस्य प्रनीतिः सूनृता वामी। (ऋ ६।४८।२०)

धन प्राप्त करनेकी प्रणाली सत्य एवं प्रशस्त रहे, तोही ठीक।

(३३३) त्वेषं शवः वृत्रहं ज्येष्ठं। (ऋ ६।६६।१)

तेजस्वी बल शत्रुका मारक ठहरे, तोही वह श्रेष्ठ है।

[बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज ऋषि।]

(३३५) अरेणवः नृम्णैः पौंस्येभिः साकं भूवन्। (ऋ. ६।६६।२)

निष्पाप वीर बुद्धि तथा सामर्थ्योंसे पूर्ण बने रहते हैं।

(३३७) अन्तः सन्तः अवद्यानि पुनानाः अयाः जनुषः न ईषन्ते, श्रिया तन्वं अनु उक्षमाणाः शुचयः जोषं अनु नि दुह्रे। (ऋ. ६।६६।४)

समाजमें रहकर दोषोंको हटाते हुए पवित्रताका सृजन करते हुए वीर अपनी हलचलोंसे जनतासे दूर नहीं जाते हैं। वे धनसे अपने शरीरोंको बलिष्ठ बनाते हुए, खुद पवित्र होते हुए सबका आनन्द बढाते रहते हैं।

(३३८) येषु धृष्णु, मक्षु अयाः, ते उग्रान् अवयासत्। (ऋ. ६।६६।५)

जिनमें शत्रुविनाशक बल है और जो तुरन्तही हमला करते हैं, ऐसे वीर सैनिक शत्रुओंको पदद्दलित कर देते हैं। भले ही वे भीषण हों।

(३३९) ते शवसा उग्राः धृष्णुसेनाः युजन्त इत्। एषु अमवत्सु स्वशोचिः रोकः न आ तस्थौ। (ऋ. ६।६६।६)

वे अपने बलसे बडे शूर तथा साहसी सैनिक साथ लेकर हमला चढानेवाले वीर हमेशा तैयार रहते हैं। इन बलिष्ठ वीरोंकी राहमें रुकावट डाल सके, ऐसा तेजस्वी प्रतिस्पर्धी कोईभी नहीं मिलता।

(३४०) वः यामः अनेनः अनश्वः अरथीः अजति। अनवसः अनभीशुः रजस्तूः पथ्याः वियाति। (ऋ. ६।६६।७)

तुम्हारा रथ निर्दोष है और घोडों तथा सारथिके न रहनेपरभी वेगपूर्वक जाता है। रक्षणके साधन या लगामके न रहनेपरभी वह रथ गर्द उडाता हुआ राहपरसे चला जाता है।

(३४१) वाजसातौ यं अवथ, अस्य धर्ता न, तरुता नास्ति। सः पार्ये दर्ता। (ऋ. ६।६६।८)

लडाईमें जिसे तुम बचाते हो, उसे घेरनेवाला कोई नहीं, विनष्ट करनेवालाभी कोई नहीं और वह युद्धमें शत्रुओंके गढोंको फोड देता है।

(३४२) ये सहसा सहांसि सहन्ते, मखेभ्यः पृथिवी रेजते, स्वतवसे तुराय चित्रं अर्कं प्रभरध्वम्। (ऋ. ६।६६।९)

जो अपने बलोंसे शत्रुदलके आक्रमणोंको रोकते हैं उन पूज्य वीरोंके सामने यह पृथिवी थरथर काँपने लगती है। इन बलिष्ठ तथा त्वरापूर्वक कार्य करनेवाले वीरोंकीही सराहना करो।

(३४३) त्विषीमन्तः तृषुच्यवसः विद्युत् अर्चत्रयः शुनयः भ्राजत्-जन्मानः अधृष्टाः। (ऋ. ६।६६।१०)

तेजस्वी, वेगपूर्वक जानेवाले, प्रकाशमान, पूज्य, शत्रुको हिलानेवाले वीर हैं, जिनका पराभव करना शत्रुके लिए दूभर है।

(३४४) वृधन्तं भ्राजदृष्टिं आविवासे। शर्धाय उग्राः शुचयः मनीषाः अस्पृध्रन्। (ऋ. ६।६६।११)

बढनेवाले तथा तेजःपूर्ण हथियार धारण करनेवाले वीर स्वागतके लिए सर्वथा योग्य हैं। बल बढानेका हेतु सामने रख ये वीर पवित्र बुद्धिसे युक्त हो, पारस्परिक होड या स्पर्धामें लगे रहते हैं।

[मित्रावरुणपुत्र वसिष्ठऋषि।]

(३४७) स्वपूभिः मिथः अभिवपन्त। वातस्वनसः अस्पृध्रन्। (ऋ. ७।५६।३)

अपने पवित्र विचारोंके साथ ये वीर इकट्ठे होते हैं और भीषण गर्जना करते हुए एक दूसरेसे स्पर्धा करते हैं।

(३४८) धीरः निण्या चिकेत, मही पृश्निः ऊधः जभार (ऋ. ७।५६।४)

बुद्धिमान वीर गुप्त बातोंको ताड सकता है। बडी गौ अपने लेवेके दूधसे इन वीरोंका पोषण करती हैं।

(३४९) सा विट् सुवीरा सनात् सहन्ती नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु। (ऋ. ७।५६।५)

वह प्रजा अच्छे वीरोंसे युक्त होकर हमेशा शत्रुका पराभव करनेवाली तथा बल बढानेवाली हो जाय।

(३५०) यामं येष्ठाः, शुभा शोभिष्ठाः, श्रिया संमिश्लाः, ओजोभिः उग्राः। (ऋ. ७।५६।६)

ये वीर हमला करनेके लिए जानेवाले, अलंकारोंसे विभूषित, कांतियुक्त तथा सामर्थ्य से भीषण हैं।

(३५१) वः ओजः उग्रं, शवांसि स्थिरा, गणः तुविष्मान्। (ऋ. ७।५६।७)

तुम वीरोंका बल भीषण है, तुम्हारी शक्तियाँ स्थायी हैं और संघ सामर्थ्यवान है।

(३५२) वः शुष्मः शुभ्रः, मनांसि क्रुध्मी, धृष्णोः शर्धस्य धुनिः। (ऋ. ७।५६।८)

तुम्हारा बल दोषरहित तुम्हारे मन क्रोधयुक्त और तुम्हारी शत्रुनाश करनेकी शक्ति वेगयुक्त है।

(३५५) सु-आयुधासः इष्मिणः सुनिष्काः स्वयं तन्वः शुम्भमानाः। (ऋ. ७।५६।११)

बढिया हथियार धारण करनेवाले, वेगपूर्वक जानेहारे और अपने शरीरोंको बनावसिंगारद्वारा सुशोभित करनेवाले ऐसे ये वीर मरुद् हैं।

(३५६) ऋतसापः शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ऋतेन सत्यं आयन्। (ऋ. ७।५६।१२)

सत्यसे चिपकनेवाले, पवित्र जीवन धारण करनेवाले पवित्र, शुद्ध वीर सरल राहसे सचाई प्राप्त करते हैं।

(३५७) अंसेषु खादयः, वक्षःसु रुक्माः उपशिश्रियाणाः, रुचानाः आयुधैः स्वधां अनुयच्छमानाः। (ऋ. ७।५६।१३)

कंधोंपर आभूषण, छातीपर हार लटकानेवाले, वे तेजस्वी वीर हथियार लेकर अपना बल बढाते हैं।

(३५८) वः बुध्न्या महांसि प्रेरते, नामानि प्र तिरध्वं, एतं सहस्रियं दम्यं गृहमेधीयं भागं जुषध्वम्। (ऋ. ७।५६।१४)

तुम वीरोंके मौलिक बल प्रकट होते हैं, अपने यशोंको बढाओ, इन सहस्रों गुणोंसे युक्त घरेलू याज्ञिक प्रसादका सेवन करो।

(३५९) वाजिनः विप्रस्य सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात। अन्यः अरावा यं आदभत्। (ऋ. ७।५६।१५)

बलवान ज्ञानीको बढिया वीर्ययुक्त धन तुरन्त दे दो, नहीं तो दूसरा कोई शत्रु शायद उसे छीन ले जाय।

(३६०) सु-अश्वाः शुभ्राः प्रक्रीळिनः शुभयन्त। (ऋ. ७।५६।१६)

वे वीर गतिमान, शोभायमान, साफसुथरे और खिलाडी बने हुए हैं।

(३६१) दशस्यन्तः सुमेके वरिवस्यन्तः मृळयन्तु। (ऋ. ७।५६।१७)

शत्रुविनाशक, स्थायी सहारा देनेवाले वीर जनताको सुख दे दें।

(३६२) ईवतः गोपा अस्ति, सः अद्वयावी। (ऋ. ७।५६।१८)

जो प्रगतिशील लोगोंका संरक्षण करनेवाला हो, वह मनमें एक बात और बाहर कुछ और ऐसा बर्ताव नहीं करता है।

(३६३) तुरं रमयन्ति, इमे सहः सहसः आनमन्ति, इमे शंसं वनुष्यतः नि पान्ति, अररुषे गुरु द्वेषं दधन्ति। (ऋ. ७।५६।१९)

वे त्वरापूर्वक कार्य करनेवालोंको आनन्द देते हैं, अपने सामर्थ्य से बलिष्ठोंको झुकाते हैं, वीरगाथाओंके गायनकर्ताओंको बचाते हैं और दर्शाते हैं कि, वे शत्रुपर भारी क्रोध करते हैं।

(३६४) इमे रध्रं जुनन्ति, भूमिं जुषन्त, तमांसि अपबाधध्वम्। (ऋ. ७।५६।२०)

ये वीर धनिकोंके निकट जसे जाते हैं, उसी प्रकार भीख-मँगोंके समीप भी चले जाते हैं। वे अँधेरा दूर करते हैं।

(३६५) वः सुजातं यत् ईं अस्ति, स्पार्हं वसव्ये नः आभजतन। (ऋ. ७।५६।२१)

तुम्हारे समीप जो उच्च कोटिका धन है, उस स्पृहणीय संपत्तिमें हमें सहभागी करो।

(३६६) यत् शूराः जनासः यह्वीषु ओषधीषु विक्षु मन्युभिः सं हनन्त, अध पृतनासु नः त्रातारः भूत। (ऋ. ७।५६।२२)

जब वीर सैनिक नदियोंमें, वनोंमें तथा जनताके मध्य बडे उत्साहसे शत्रुदलपर टूट पडते हैं, तब उन युद्धोंमें तुम हमारे रक्षक बनो।

(३६७) उग्रः पृतनासु साळ्हा, अर्वा वाजं सनिता। (ऋ. ७।५६।२३)

जो उग्र स्वरूपवाला वीर है, वह लडाईमें शत्रुओंको जीतता है और घोडाभी युद्धमें अपना बल दर्शाता है।

(३६८) यः वीरः असु-रः जनानां विधर्ता शुष्मी अस्तु। येन सुक्षितये अपः तरेम, अध स्वं ओकः अभि स्याम। (ऋ. ७।५६।२४)

जो वीर अपना जीवन अर्पित करके जनताका संरक्षण करता है, वह बलवान बन जाता है। उसकी सहायतासे प्रजाका अच्छा निवास हो, इसलिए समुद्रकोभी तैरकर चले जाएँ और अपने घरपर सुखपूर्वक रहें।

(३६९) यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात। (ऋ. ७।५६।२५)

तुम हमारी रक्षा हमेशा कल्याणकारक मार्गोंसे करते रहो।

(३७०) यत् उग्राः अयासुः, ते उर्वी रेजयन्ति। (ऋ. ७।५७।१)

जो शूर दुश्मनोंपर धावा करते हैं, वे भूमिको हिला देते हैं।

(३७१) रुक्मैः आयुधैः तनूभिः यथा भ्राजन्ते न एतावद् अन्ये। विश्वपिशः पिशानाः शुभे समानं अञ्जि कं आ अञ्जते। (ऋ. ७।५७।३)

मालाओं, हथियारों तथा शरीरोंसे ये वीर सैनिक जिस तरह सुहाने लगते हैं, वैसे दूसरे कोइभी नहीं जगमगाते हैं। भली भाँति साजसिंगार करनेवाले ये वीर अपनी शोभाके लिए समान वीरभूषा सुखपूर्वक कर लेते हैं।

(३७४) अनवद्यासः शुचयः पावकाः रणन्त, नः सुमतिभि प्रावत, न वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत। (ऋ. ७।५७।५)

प्रशंसनीय, शुद्ध, पवित्र बनकर वीर रममाण होते हैं। अपने अच्छे विचारोंसे हमारी रक्षा कीजिए और अन्नोंसे पुष्टि मिल जाए, इस हेतु सारे संकटोंसे पार ले चलो।

(३७५) नः प्रजायै अमृतस्य प्रदात, सूनृता रायः मघानि जिगृत। (ऋ. ७।५७।६)

हमारी सन्तानके लिए अमृतरूपी अन्न दे दो, आनन्द-दायक धन तथा सुखवैभवका भी दान करो।

(३७६) विश्वे सर्वताता सूरीन् अच्छ ऊती आजिगात। ये त्मना शतिनः वर्धयन्ति। (ऋ. ७।५७।७)

वे सारे वीर इस यज्ञमें ज्ञानियोंके समीप सीधे अपनी संरक्षक शक्तियोंसहित आ जावें, क्योंकि वे स्वयंही सैकडो मानवोंका संवर्धन करते हैं।

(३७७) यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान्, साकं-उक्षे गणाय प्रार्चत, ते अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति। (ऋ. ७।५८।१)

जो दिव्य स्थान जानता है, उस सामुदायिक बलसे युक्त वीरोंके दलकी पूजा करो। वे वीर वंशनाशरूपी भीषण आपत्तिसे हमें बचाते हैं।

(३७९) गतः अध्वा जन्तुं न तिराति। नः स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्र तिरेत। (ऋ. ७।५८।३)

जिस मार्गपर वीर चल चुके हों, वहाँ किसीकोभी कष्ट नहीं पहुँचता है, (सभी उधर प्रसन्न हो उठते हैं)। स्पृहणीय रक्षणों से हमारा संवर्धन करो।

(३८०) युष्मा-ऊतः विप्रः शतस्वी सहस्री, युष्मा-ऊतः अर्वा सहुरिः, युष्मा-ऊत सम्राट् वृत्रं हन्ति, तत् दत्रं प्र अस्तु। (ऋ. ७।५८।४)

वीरोंके संरक्षणमें रहकर ज्ञानी पुरुष सैकडो तथा सहस्रावधि धनोंको प्राप्त करता है, वीरोंका संरक्षण मिलनेपर घोडा विजयी बनता है और वीरोंकी रक्षा पानेपर नरेशभी शत्रुका पराभव करता है। वीर पुरुष हमें वह दान दें।

(३८१) द्वेषः आरात् चित् युयोत (ऋ. ७।५८।६)

जबतक शत्रु दूर है, तभीतक उसका विनाश करो।

(३८४) यः द्विषः तरति, सः क्षयं प्रतिरते । (ऋ. ७।५९।२)

जो शत्रुका पराभव करता है, वह अपने विनाशके परे चला जाता है, याने सुरक्षित बन जाता है।

(३८६) यस्मै अराध्व, यः ऊतिः पृतनासु नहि मर्धति। (ऋ. ७।५९।४)

जिसे तुम अपना संरक्षण देते हो, उसका विनाश युद्धोंमें तुम्हारे संरक्षणोंसे नहीं होता है।

(३८९) तन्वः शुम्भमानाः हंसासः मदन्तः आ अपप्तन्, विश्वं शर्धः मा अभितः निसेद। (ऋ. ७।५९।७)

अपने शरीरोंको सुहानेवाले ये वीर हंसपंक्तियोंकी नाईं कतारमें रहकर प्रसन्नतापूर्वक संचार करते आ पहुँचे हैं। उनका यह सारा बल मेरे चारों ओर संरक्षणार्थ रहे।

(३९०) यः दुर्हणायुः न चित्तानि अभि जिघांसति सः द्रुहः पाशान् प्रतिमुचीष्ट, तं हन्मना हन्तन। (ऋ. ५।५९।८)

जो दुष्ट शत्रु हमारे अन्तःकरणोंको चोट पहुँचाता है तथा पारस्परिक द्रोहके भाव हममें फैलायेगा, उसे तुम मार डालो।

(३९१) युष्माक ऊती आगत, मा अपभूतन (ऋ. ५।५९।१०)

तुम अपनी संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे समीप आओ और हमसे दूर न हो जाओ।

(३९४) विक्षु वितिष्ठध्वं, ये वयः भूत्वी नक्तभिः पतयन्ति, ये रिपः दधिरे, रक्षसः इच्छत, गृभायत, संपिनष्टन। (ऋ. ७।१०४।१८)

प्रजाओंके मध्य निवास करो, जो वेगवान बनकर रात्रीके समय हमके चढाते हैं, तथा जो हल्ला कोह मचा देते हैं, इन राक्षसों को ढूँढकर पकड लो और उनका विनाश करो।

[बिन्दु वा आंगिरसपुत्र पूतदक्ष ऋषि।]

(३९५) माता गौः धयति, युक्ता रथानां वह्निः। (ऋ. ८।९४।१)

गोमाता दूध पिलाती है, उस दुग्धसे संयुक्त हो वीर रथोंके संचालक बनते हैं।

(३९७) नः विश्वे अर्यः कारवः सदा तत् सु आ गृणन्ति। (ऋ. ८।९४।३)

हमारे सभी श्रेष्ठ कारीगर सदैव उस उत्तम बलकी भली भाँति सराहना करते हैं।

(४००) प्रातः गोमतः अस्य सुतस्य जोषं मत्सति। (ऋ. ८।९४।६)

सुबह गौका दूध मिलाकर तयार किये हुए इस सोमरसका पान करनेपर आनन्दयुक्त उत्साह बढता है।

(४०१) पूतदक्षसः सूरयः स्त्रिधः अर्षन्ति। (ऋ. ८।९४।७)

बलवान, ज्ञानवान तथा शत्रुविनाशक वीर हमारी ओर आते हैं।

(४०२) दस्मवर्चसां महानां अवः अद्य वृणे। (ऋ. ८।९४।८)

सुन्दर एवं बडे वीरोंकी रक्षाकी मैं आज याचना करता हूँ।

(४०३) ये विश्वा पार्थिवानि आ पप्रथन्, सोमपीतये। (ऋ. ८।९४।९)

जिन्होंने सारे पार्थिव क्षेत्रोंका विस्तार किया है, उन वीरोंको सोमपानके लिए मैं बुलाता हूँ।

(४०४) पूतदक्षसः सोमस्य पीतये हुवे। (ऋ. ८।९४।१०)

बलिष्ठ वीरोंको सोमपानके लिए बुलाता हूँ।

[भृगुपुत्र स्यूमरश्मि ऋषि।]

(४०७) अर्हसे अस्तोषि, न शोभसे। (ऋ. १०।७७।१)

जो योग्य हैं, उनकीही स्तुति करता हूँ, सिर्फ बाहरी टीमटाम या सजधजके कारण कभी सराहना न करूँगा।

(४०८) मर्यासः श्रिये अञ्जीन् अकृण्वत, पूर्वीः क्षपः न अति। (ऋ. १०।७७।२)

ये वीर शोभाके लिए गणवेश पहनते हैं। पहलेसेही घातक या हत्यारे शत्रु इन्हें पराजित नहीं कर सकते।

(४०९) ये तमना महिना प्र रिरिच्रे, पाजस्वन्तः पनस्यवः रिशादस अभिद्यवः। (ऋ. १०।७७।३)

जो अपनी शक्तिसे बडे बन जाते हैं, ये वीर बलवान, प्रशंसनीय शत्रुविनाशक एवं तेजस्वी होते हैं।

(४१०) युष्माकं बुध्ने मही न विथुर्यति, प्रथयति, प्रयस्वन्तः सबाचः आगत। (ऋ. १०।७७।४)

तुम वीरोंके पैरोंके नीचेकी भूमि सिर्फ काँपतीही नहीं, किन्तु स्पन्दमान हो उठती है। उदारचेता वीरोंके हृदय तुम सभी इकट्ठे हो इधर पधारो।

(४११) यूयं स्वयशसः रिशादसः परिप्रुषः प्रसितासः। (ऋ. १०।७७।५)

तुम यशस्वी, शत्रुनाशक, पोषक तथा हमेशा तैयार रहनेवाले वीर हो।

(४१२) यूयं यत् परावतः प्रवहध्वे, महः संवरणस्य राध्यस्य वस्वः विदानासः, सनुतः द्वेषः आरात् चित् युयोत। (ऋ. १०।७७।६)

तुम जब दूरसे वेगपूर्वक आते हो, तो बडे स्वीकारने-योग्य बढिया धनका दान करो और दूर रहनेवाले द्वेषाओं-को दूरसेही खदेड डालो।

(४१३) यः मानुषः ददाशत्, सः रेवत् सुवीरं वयः दधते, देवानां अपि गोपीथे अस्तु। (ऋ. १०।७७।७)

जो मानव दान देता है, वह धन एवं वीरोंसे पूर्ण अन्न-को पाता है और वह देवोंके गोरसपानके मौकेपर उपस्थित रहनेयोग्य बनता है।

(४१४) ते ऊमाः यज्ञियासः शंभविष्ठाः, रथतूः महः चकानाः नः मनीषां अवन्तु। (ऋ. १०।७७।८)

वे रक्षा करनेहारे वीर पूजनीय तथा सुख देनेवाले हैं। रथमेंसे त्वरापूर्वक जानेहारे वे वीर महत्त्व पाते हैं। वे हमारी आकांक्षाओंकी रक्षा करें।

(४१५) विप्रासः सु-आध्यः सुअप्रसः सुसंदृशः अरेपसः। (ऋ. १०।७८।१)

वे वीर ज्ञानी, अच्छे विचारवाले बढिया कर्म करनेहारे, प्रेक्षणीय और निष्पाप हैं।

(४१६) ये रुक्मवक्षसः स्वयुजः सद्यऊतयः, ज्येष्ठाः सुशर्माणः ऋतं यते सुनीतयः। (ऋ. १०।७८।२)

जो वक्षःस्थलपर माला धारण करनेवाले, अपनी अन्तः-स्फूर्तिसे काममें जुटनेवाले, तुरन्त रक्षाका भार उठानेवाले तथा श्रेष्ठ सुख देनेवाले वीर होते हैं, वे सीधी राहपरसे चलनेवालेको उच्च कोटिका मार्ग दिखाते हैं।

मरुत्-देवताके मंत्रोंमें नारी-विषयक उल्लेख।

(२८) वत्सं न माता सिषक्ति। (ऋ. १।३८।८)

माता जिस प्रकार बालक को अपने समीप रखती है, उसी प्रकार (बिजली मेघवृन्दके समीप रहती है)।

(१२३) प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयः (ऋ. १।८५।१)

प्रगतिशील एवं आगे बढनेकी पूर्ण क्षमता रखनेवाले वीर मरुत् (बाहर यात्राके लिए जाते समय) नारियोंके तुल्य अपने आपको सुशोभित तथा अलंकृत करते हैं।

(१४७) प्र एषामज्मेषु (भूमिः) विथुरेव रेजते।

(ऋ. १।८७।३)

इन वीरोंके अतिवेगवान हमलोंमें भूमितक अनाथ एवं असहाय महिलाके समान थरथर काँप उठती है।

(१६२) रथीयन्तीव प्र जिहीते ओषधिः।

(ऋ. १।१३९।५)

सारी ओषधियाँभी रथमें बैठी नारीके समान विकँपित हो उठती हैं।

(१७४) गुहा चरन्ती मनुषो न योषा। (ऋ. १।१६७।३)

अन्तःपुरमें संचार करती हुई मानवी महिलाकी नाईं (वीरोंकी तलवार कभी कभी अदृश्यभी रहती है।)

(१७५) साधारण्या इव मरुतः सं मिमिक्षुः।

(ऋ. १।१६७।४)

साधारण कोटिकी नारीके साथ मानव जिस तरह बर्ताव रखते हैं, उसी प्रकार (सत्तुओं की जमीनपर) मरुतोंने वर्षा कर डाली।

(१७६) विसितस्तुका सूर्या इव रथं आ गात्।

(ऋ. १।१६७।५)

केश सँवारकर भली भाँति जूडा बाँधी हुई सूर्यासावित्रीके समान (रोदसी=भूमि या विद्युत्) [वीरोंकी पत्नी] रथके निकट आ पहुँची।

(१७७) आ अस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्रां। (ऋ. १।१६७।६)

तुम नवयुवक वीर सदैव सहवासमें रहनेवाली, बलिष्ठ युवतीको– निज पत्नीको– शुभ मार्गमें– यज्ञमें स्थापन करते हो– ले आते हो।

(१७८) यत् ईं वृषमनाः अहंयुः स्थिरा चित् जनीः वहते सुभागाः। (ऋ. १।१६७।७)

यह पृथ्वीतक इनके पीछे चलनेवाली, बलिष्ठोंपर मन केन्द्रित करनेवाली पर वीरपत्नी होनेकी तीव्र लालसा करनेवाली सौभाग्ययुक्त प्रजा धारण करती है– उत्पन्न करती है।

(२३०) मित्रं न योषणा (मारुतं गणं अच्छ)।

(ऋ. ५।५२।१४)

युवती जिस प्रकार प्रिय मित्रके समीप चली जाती है, ठीक उसी प्रकार (वीर सैनिकों के संघके समीप चले जाओ।

(२९८) भर्ता इव गर्भं स्वं इत् शवः धुः।

(ऋ. ५।५८।७)

पति जिस भाँति स्त्रीमें गर्भकी स्थापना करता है, वैसेही इन वीरोंने अपना निजी बल (राष्ट्रमें) प्रस्थापित किया है।

(३१०) वि सक्थानि नरो यमुः, पुत्रकृथे न जनयः।

(ऋ ५।६१।३)

पुत्रको जन्म देते समय नारियोंकी जँघाएँ जिस प्रकार तानी जाती हैं, वैसेही तानी हुई अश्वजंघाओंका नियमन वे वीर करते हैं।

(४२०) शिशूलाः न क्रीळाः सुमातरः।

(ऋ. १०।७८।६)

उत्कृष्ट माताओंके निरोगी बालकोंकी नाईं वे वीर सैनिक खिलाडी भावसे पूर्ण हैं।

(४३२) माता इव पुत्रं छन्दांसि पिपृत।

(अथर्व० ५।२६।५)

माता जिस प्रकार अपने बालकोंका संगोपन करती है, उसी प्रकार हमारे मंत्रोंका– इच्छाओंका संगोपन करो।

(४३९) तुन्दाना ग्लहा, तुभ्रा कन्या इव, एरं पत्या इव जाया एजाति। (अथर्व० ६।२२।३)

कडकनेवाली बिजली, नवयुवती युवकको प्राप्त करती है उसी प्रकार तुम और पतिसे आलिंगित नारीके समान विकंपित होती है।

(४५७) अदारसृत् भवतु देव सोम। (अथर्व० १।२०।१)

हे तेजस्वी सोम! हमारा शत्रु अपनी स्त्रीसेभी न मिले, ऐसा प्रबंध कर दो।

मरुद्देवता-पुनरुक्त-मन्त्राः ।

मरुन्मन्त्रक्रमाङ्कः

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।६।९)

[४] अतः परिज्मन्ना गहि **दिवो वा रोचनादधि** ।
समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

प्रस्कण्वः काण्वः । उषा । अनुष्टुप् । (ऋ.१।४९।१)

उषो भद्रेभिरा ऽऽ **गहि दिवश्चिद् रोचनादधि** ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । बृहती । (ऋ.५।५६।१)

[२७५] अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये **दिवश्चिद् रोचनादधि** ॥१॥

सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ । अनुष्टुप् । (ऋ.८।८।७)

दिवश्चिद् रोचनादधि आ नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्सा प्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥

मेधातिथिः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।१५।२)

[५] मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन ।
यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।१२)

[५७] **यूयं हि ष्ठा सुदानवो** रुद्रा ऋभुक्षणो दमे ।
उत प्रचेतसो मदे ॥ १२ ॥

ऋजिश्वा भरद्वाजः । विश्वेदेवाः । उष्णिक् (ऋ.६।५१।१५)

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ १५ ॥

कुसीदी काण्वः । विश्वेदेवाः । गायत्री (ऋ.८।८३।९)

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
अधा चिद्व उत ब्रुवे ॥ ९ ॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३७।४)

[९] **प्र वः** शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे ।
देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥

मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ.८।३२।२७)

प्र व उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे ।
देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ २७ ॥ (इन्द्रः२०६)

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री । (ऋ १।३७।१-५)

[६] **क्रीळं वः शर्धो मारुतं** अनर्वाणं रथेशुभम् ।
कण्वा अभि प्र गायत ॥ १ ॥

[१०] प्र शंसा गोष्वघ्न्यं **क्रीळं यच्छर्धो मारुतम्** ।
जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३७।८)

[१३] येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः ।
भिया **यामेषु रेजते** ॥ ८ ॥

सोभरिः काण्वः । मरुतः । ककुप् (ऋ ८।२०।५)

[८६] अच्युता चिद् वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः ।
भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३७।११)

[१६] त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् ।
प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । बृहती (ऋ.५।५६।४)

[२७८] नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं **प्र च्यावयन्ति यामभिः** ॥४॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३७।१२)

[१७] **मरुतो यद्ध वो** बलं जनाँ **अचुच्यवीतन** ।
गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।११)

[५६] **मरुतो यद्ध वो** दिवः सुम्नायन्तो हवामहे ।
आ तू न उप गन्तन ॥११॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३८।१)

[२१] **कद्ध नूनं कधप्रियः** पिता पुत्रं न हस्तयोः ।
दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।३१)

[७६] **कद्ध नूनं कधप्रियो** यदिन्द्रमजहातन ।
को वः सखित्व ओहते ॥३१॥

कण्वो घौरः । मरुतः । बृहती (ऋ.१।३९।५)

[४०] **प्र वेपयन्ति पर्वतान्** वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत **मरुतो** दुर्मदा इव **देवासः सर्वया विशा** ॥५॥

वसूयव आत्रेयाः । विश्वेदेवाः । गायत्री (ऋ.५।२६।९)

एवं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः ।
देवासः सर्वया विशा ॥ ९ ॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।४)

[४९] वपन्ति **मरुतो** मिहं **प्र वेपयन्ति पर्वतान्** ।
यद् यामं यान्ति वायुभिः ॥ ४ ॥

कण्वो घौरः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ.१।३९।६)

[४१] **उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः** ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोद् अबीभयन्त मानुषाः ॥६॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.१।८५।५)

[१२७] प्र यद् **रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं** वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराः चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥५॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।२८)

[७३] यदेषां **पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः** ।
यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥२८॥

कण्वो घौरः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ.१।३९।७)

[४२] आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा **अवो वृणीमहे** ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥७॥

कण्वो घौरः । पूषा । गायत्री (ऋ.१।४२।५)

आ तत् ते दस्र मन्तुमः **पूषन्नवो वृणीमहे** ।
येन पितॄनचोदयः ॥५॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (ऋ.१।६४।४)

[१११] चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते **वक्षःसु रुक्माँ** अधि येतिरे **शुभे** । अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥४॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती (ऋ.५।५४।११)

[२६०] अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो **वक्षःसु रुक्मा** मरुतो **शुभः** । अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु रथे वितता हिरण्ययीः ॥११॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (ऋ.१।६४।६)

[११३] पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः । अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं **दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्** ॥६॥

हरिमन्त आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । जगती (ऋ. ९।७२।६)

अंशुं **दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं** कविं कवयोऽपसो मनीषिणः । समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥६॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (ऋ.१।६४।१२)

[११९] घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं **रुद्रस्य सूनुं हवसा** गृणीमसि । रजस्तुरं तवसं **मारुतं** गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥१२॥

बार्हस्पत्यो भारद्वाजः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.६।६६।११)

[३४४] तं वृधन्तं **मारुतं** भ्राजदृष्टिं **रुद्रस्य सूनुं हवसा** विवासे । दिवाय शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृधन् ॥११॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (ऋ.१।६४।१३)

[१२०] प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती **मरुतो यमावत अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरा**पृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥१३॥

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः । जगती (ऋ.१।१६६।८)

[१६५] शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् पूर्भी रक्षता **मरुतो यमावत** । जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥

गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः । जगती (ऋ. २।२६।३)

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स **पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः** । देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३॥

सुवेदाः शैरीषिः । इन्द्रः । जगती (ऋ.१०।१४७।४)

स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकनन्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति । त्वावृधो मघवन् दाश्वध्वरो मक्षू स **वाजं भरते धना नृभिः** ॥४॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती (१।८५।२)

[१२४] त उक्षितासो **महिमानमाशत** दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः । अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥२॥

सुपर्णः काण्वः । इन्द्रावरुणौ । जगती (ऋ. ८।५९ [वाल. ११] । २)

निष्षिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा **महिमानमाशत** ।

या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो यये ः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥२॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.१।८५।५)

[११७] प्र यद् **रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं** वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥५॥

कण्वो घौरः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ.१।३९।६)

[४१] उपो **रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।**
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोद् अबीभयन्त मानुषाः ॥६॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।२८)

[७३] यदेषां **पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।**
यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥२८॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती (ऋ. १।८५।८)

[१३०] शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे । **भयन्ते विश्वा भुवना** मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥८॥

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः । जगती (ऋ.१।१६६।४)

[१५१] आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् । **भयन्ते विश्वा भुवनानि** हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥४॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती (ऋ.१।८५।९)

[१३१] त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् । धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽ**हन् वृत्रं निरपामौब्जद्-र्णवम्** ॥५॥

सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती (ऋ.१।५६।५)

वि यत् तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्या**हन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम्** ॥६॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।८६।३)

[१३७] उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत ।
स गन्ता **गोमति व्रजे** ॥३॥

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । सतोबृहती

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् । (ऋ. ७।३२।१०)
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स **गोमति व्रजे** ॥१०॥

वशोऽश्व्यः । इन्द्रः । सतोबृहती (ऋ.८।४६।९)

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम **गोमति व्रजे** ॥९॥

श्रुष्टिगुः काण्वः । इन्द्रः । बृहती
(ऋ.८।५१ [वाल.३] । ५)

यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम **गोमति व्रजे** ॥५॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।८६।४)

[१३८] अस्य वीरस्य बर्हिषि **सुतः सोमो दिविष्टिषु ।**
उक्थं मदश्च शस्यते ॥ ४ ॥

कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ.८।७६।९)

पिबेन्द्र मरुत्सखा **सुतं सोमं दिविष्टिषु ।**
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥

वामदेवो गौतमः । इन्द्राबृहस्पतिः । गायत्री (ऋ.४।४९।१)

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती ।
उक्थं मदश्च शस्यते ॥१॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।८६।५)

[१३९] अस्य श्रोषन्त्वाभुवो **विश्वा यश्चर्षणीरभि ।**
सूरं चित् सस्रुषीरिषः ॥ ५ ॥

वामदेवो गौतमः । अग्निः । अनुष्टुप् (ऋ.४।७।४)

आशुं दूतं विवस्वतो **विश्वा यश्चर्षणीरभि ।**
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥ ४ ॥

द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप् (ऋ. ५।२३।१)

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत् ॥१॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती (ऋ.१।८७।४)

[१४८] स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणोऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः । **असि सत्य ऋणया**वानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥४॥

गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः । जगती (ऋ. २।२३।११)

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळु-हर्षिणः ॥ ११ ॥

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.१।१६८।९)

[१९१] असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।

Regd. No B. 1463

संपूर्ण महाभारत ।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छाप चुका है। इस सजिल्द संपूर्ण महाभारतका मूल्य ६५) रु रखा गया है। तथापि यदि आप पेशगी म० आ० द्वारा संपूर्ण मूल्य भेजेंगे, तो यह ११००० पृष्ठोंका संपूर्ण, सजिल्द, सचित्र ग्रन्थ आपको रेलपार्सल द्वारा भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। आर्डर भेजते समय अपने रेलस्टेशनका नाम अवश्य लिखें। **महाभारतका** नमूना पृष्ठ और सूची मगाईये।

श्रीमद्भगवद्गीता ।

इस '**पुरुषार्थबोधिनी**' भाषा-टीकामें यह बात दर्शायी गयी है कि वेद, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थोंकेही सिद्धान्त गीतामें नये ढगसे किस प्रकार कहे हैं। अत इस प्राचीन परपराको बताना इस '**पुरुषार्थ-बोधिनी**' टीका का मुख्य उद्देश है, अथवा यही इसकी विशेषता है।

गीता— के १८ अध्याय तीन विभागो में विभाजित किये हैं और उनकी एकही जिल्द बनाई है। मू० ९) रु० डाक व्यय १॥) म० आ० से ९) रु० भेजनेवालोंको डाकव्यय माफ होगा।

भगवद्गीता-समन्वय ।

यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करनेवालोंके लिये अत्यत आवश्यक है। '**वैदिक धर्म**' के आकार के १३५ पृष्ठ, चिकना कागज मू० १) सजिल्द का मू० १॥) रु०, डा० व्य० ।≈)

भगवद्गीता-श्लोकार्धसूची ।

इसमें श्रीमद् गीताके श्लोकार्धोंकी अकारादिक्रमसे आद्याक्षरसूची है और उसी क्रमसे अन्त्याक्षरसूची भी है। मूल्य केवल ।≈), डा० व्य० =)

आसन ।

'योग की आरोग्यवर्धक व्यायाम-पद्धति'

अनेक वर्षोंके अनुभवसे यह बात निश्चित हो चुकी है, कि शरीरस्वास्थ्यके लिये आसनोंका आरोग्यवर्धक व्यायामही अत्यंत सुगम और निश्चित उपाय है। अशक्त मनुष्यभी इससे अपना स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। इस पद्धतिका सम्पूर्ण स्पष्टीकरण इस पुस्तकमें है। मूल्य केवल २ दो रु० और डा० व्य० ।≡) सात आना है। म० आ० से २।≡) रु० भेज दें।

आसनोंका चित्रपट- २०"×२७" इंच मू० ≡) रु., डा. व्य. -)

मंत्री-स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि०सातारा)

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवळेकर, भारत-मुद्रणालय, औन्ध